हर-गौरीसंवादात्मकं

तोडलतन्त्रम्

निर्वाणतन्त्रम्

भाषाटीकासमन्वितम्

भाषाटीकाकार

श्री एस. एन. खण्डेलवाल

हर-गौरीसंवादात्मकं

तोडलतन्त्रम्
निर्वाणतन्त्रम्

भाषाटीकासमन्वितम्

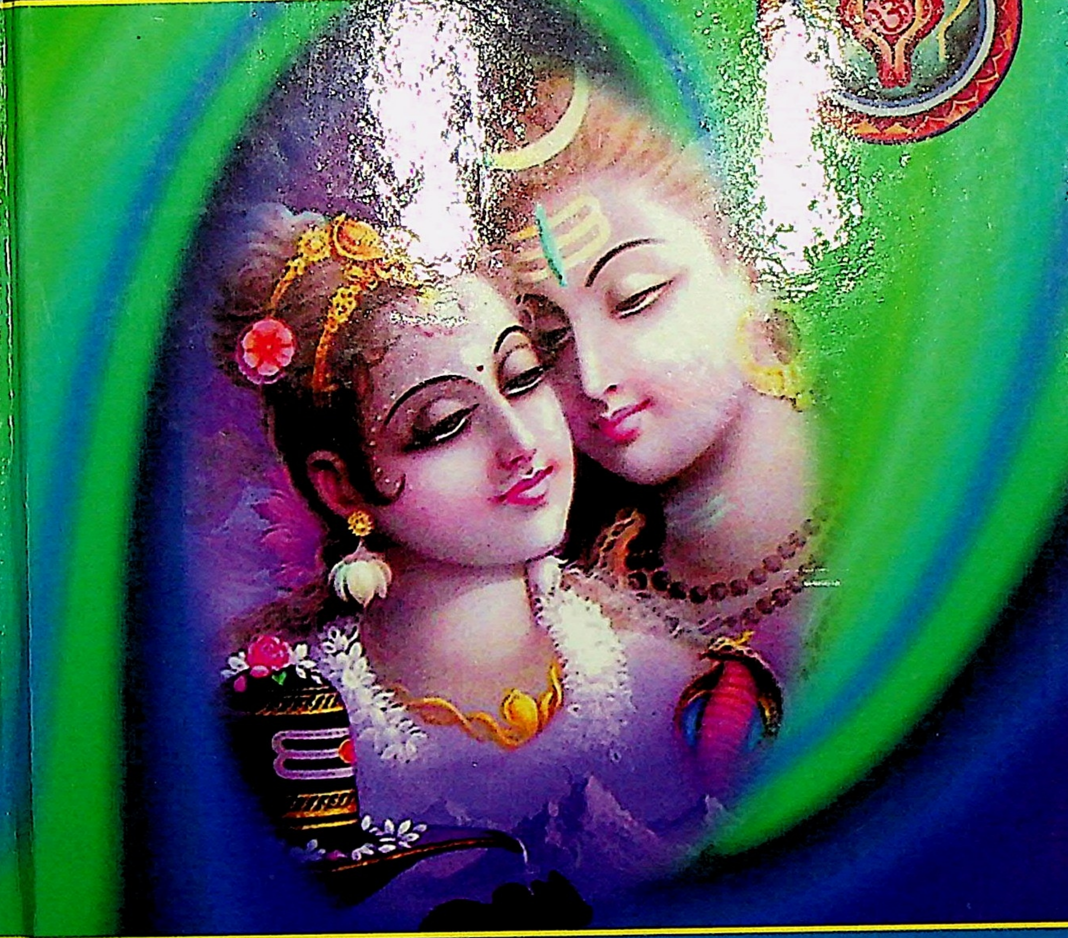

भाषाटीकाकार

श्री एस. एन. खण्डेलवाल

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
527

हर-गौरीसंवादात्मकं

तोडलतन्त्रम्

निर्वाणतन्त्रम्

भाषाटीकासमन्वितम्

व्याख्याकारः
श्री एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© सर्वाधिकार सुरक्षित । इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे-इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉडिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नही किया जा सकता है।

ISBN : 978-93-81484-10-4

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मंदिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी-221001
दूरभाष : (0542) 2335263

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : 2012
₹ 225

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : 23286537

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. वंगलो रोड़, जवाहर नगर,
पोस्ट वॉक्स न. 2113, दिल्ली-10007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (वैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट वॉक्स न. 1069, वाराणसी-221001

मुद्रक

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

किञ्चिन्निवेदनम्

तोडलतन्त्र के भाषानुवाद के अवसर पर सुविज्ञ पाठकगण के समाधानार्थ कुछ विचार प्रस्तुत करने की प्रेरणा भगवती की ओर से हो रही है। मुख्यत: यह कहना है कि यह तन्त्र विस्तृत प्रक्रियात्मक वर्णना से युक्त नहीं है; जैसा कि सामान्यत: तन्त्रों की परम्परा रही है अर्थात् इसमें परशिव ने संक्षेप में तथा सांकेतिक रूप में ही उपदेश दिया है। जहाँ विस्तार से वर्णन किया जाता है, वह अपेक्षाकृत अविज्ञ श्रोता के लिये उसकी अल्पज्ञता के कारण से होता है; परन्तु जो विषय सुविज्ञ श्रोता के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, उसमें इतने विस्तार से कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती। ऐसा श्रोता सांकेतिक रूप में, संक्षेप में तथा सूत्ररूप में ही कही गयी उक्तियों को समझ लेता है। इसमें प्रतिभाभेद ही कारण है। जिसकी जैसी प्रतिभा है, उसके लिये तदनुरूप शास्त्र का ही विधान किया जाता है। शास्त्रवैविध्य की पृष्ठभूमि में यही कारण सन्निहित है। यद्यपि अधिकांश तन्त्रों की श्रोता भगवती ही हैं; परन्तु वे अपने समाधानार्थ जिज्ञासु का रूप ग्रहण नहीं करतीं। भगवती को क्या जिज्ञासा? वे जो कृपापरवश हो प्रत्येक स्तर की प्रतिभा वाले साधक के स्तर से उसके हितार्थ परशिव के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत करती हैं। उनकी यह जिज्ञासा अपने लिये न होकर, विभिन्न स्तर के साधकों के हितार्थ होती है। इसी कारण तन्त्रों में अनेक विभिन्नतायें हैं। अन्तरतम में तन्त्र अद्भुत अविभक्तरूप होते हुये भी साधक की प्रतिभा के भेद से विभक्तवत् प्रतीत होता है। आपात दृष्टि से भेदरूप प्रतीयमान होने पर भी शाक्त, वैष्णव, शैव, गाणपत्यादि सभी तन्त्रों में एक अव्यक्त ऐक्य का दर्शन ज्ञानीगण करते हैं और ऐसी ही ज्ञानोज्ज्वल दृष्टि में तन्त्र का रहस्य उद्घाटित हो पाता है।

यहाँ आलोच्य विषय है—तोडलतन्त्र में संक्षेप में वर्णन किया गया विधान। सामान्यत: केवल इस तन्त्र में वर्णित प्रक्रिया के आधार पर अनुष्ठान में रत हो सकना असम्भवप्राय: है। प्रथम पटल में किस देवी का कौन भैरव है? इसका वर्णन किया गया है। दुर्गा के भैरव को 'नारद' की संज्ञा प्रदान की गयी है; परन्तु ये नारद ऋषि नहीं हैं। 'ना' अर्थात् सृष्टिकर्त्ता, 'र' अर्थात् संहाररूप शिव तथा 'द' अर्थात् पालनकर्त्ता विष्णु। अर्थात् यह दुर्गा के व्यापकत्व का प्रतीक है कि उनके भैरव त्रिदेवों की सम्मिलित अविभक्त सत्ता से एकीभूत हैं। यहाँ सृष्टि के प्रयोजन से एक ही परमसत्ता

के त्रिधा विभक्त होने के संकेत के साथ यह भी संकेत दिया गया है कि परमा शक्ति के साथ जो शिवरूप भैरव हैं, वे विभक्त सत्ता न होकर परम सत्ता के अविभक्त रूप हैं; जहाँ सृष्टि, स्थिति तथा संहरात्मक प्रक्रिया एक ही बिन्दु में समाहित है। देवी के सान्निध्य में विभक्त भी अविभक्त हैं।

प्रमुखत: इस तन्त्र में मात्र महाविद्या दक्षिणा काली अथवा काली एवं महाभैरवी तारा तथा भूतकात्यायनी तथा शिव का ही वरण किया गया है। इनकी प्रक्रिया के वर्णन के पूर्वक्षण में देहतत्त्व के रूप में 'ऊर्ध्वमूलमध: शाखा' का द्वितीय पटल में अत्यन्त बुद्धिग्राह्य समाधान प्रस्तुत किया गया है। साथ ही देहब्रह्माण्ड में ही समस्त तीर्थों का अधिष्ठान भी प्रदर्शित किया गया है। तदनन्तर योगोक्त नाड़ीसंस्थान का सूक्ष्म वर्णन करते हुये यह प्रतिपादित किया गया है कि योगरहित तन्त्र की कोई उपयोगिता ही नहीं है; क्योंकि तान्त्रिक प्रक्रिया प्राणायाम तथा नाड़ीज्ञान पर आधारित है। आजकल जो तान्त्रिक परम्परा कहीं-कहीं कुछ बच गयी है, उसमें योग का अभाव हो जाने के कारण वह परम्परासिद्धि से दूरवर्त्तिनी होती परिलक्षित हो रही है। अत: तन्त्रसिद्धि के स्थान पर वह एक प्रकार से असिद्धिदात्री ही है।

इस सम्बन्ध में यह भी कहना है कि इस तन्त्र के तृतीय पटल में मन्त्रानुष्ठान का संक्षेप में उपदेश दिया गया है; परन्तु प्रक्रिया का यथाविधि विवरण नहीं है। ऐसा इसलिये है कि यह तन्त्र अतिसुविज्ञ साधकों के लिये उपदिष्ट है, जो प्रक्रियागत आचार तथा विधि के ज्ञाता थे; परन्तु पाठकगण की सुविधा के लिये यह सुझाव देना आवश्यक है कि वे प्रक्रिया तथा अनुष्ठानविधि के लिये 'आगमतत्त्वविलास' ग्रन्थोक्त कालीप्रकरण तथा ताराप्रकरण का अवलोकन करें, जहाँ प्रामाणिक शास्त्रीय विधान से सबका उल्लेख है।

इस ग्रन्थ में मुद्राओं का वर्णन है, उसका भी विधान 'आगमतत्त्वविलास' में अंकित है। मुद्रायें उर्जा-संरक्षण तथा उर्जा-प्रक्षेपण की अत्यन्त रहस्यमय पद्धति हैं। यह भी एक प्रकार से अर्धयौगिक प्रक्रिया है। यहाँ विश्व वर्णन, सप्तद्वीपादि वर्णन तथा सप्त सागरादि वर्णन है। यह भौगोलिक विवरण कदापि नहीं है। यह सूक्ष्म शरीरस्थ षट्चक्रों के व्यापकत्व कर निदर्शन है। अत: पाठकगण इसे बाह्य जगत् का भूगोल कदापि न समझें, यह साधना का अतिगुह्यतम गुरुगम्य रहस्य है; परन्तु विडम्बना है कि ऐसे गुरु हैं कहाँ?

नवम पटल (श्लोक २३-२४) में उल्लेख है कि यदि साधक नित्य मालामन्त्र, षोडशीमन्त्र (१६ अक्षरों वाले मन्त्र) तथा अट्ठारह अक्षरों वाले मन्त्र का जप करे तो

वह दीर्घकाल-पर्यन्त जीवित रहता है; परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ में इन मन्त्रों का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि यह विषय भी गुरुगम्य ही है। ग्रन्थ में प्रत्येक प्रक्रियागत अनुष्ठानहेतु कुम्भक, रेचक तथा पूरक का वर्णन है। गहन पूरक करके दीर्घकालीन कुम्भक अवस्था की मन्त्रभावना सबके लिये साध्य नहीं है। यह भी तन्त्र के साथ योग की अनिवार्यता सिद्ध करता है।

इस तन्त्र में सर्वाधिक अलौकिक प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है; वह है—षट्चक्रान्तर्गत प्रत्येक चक्र के दल का माला के मनकों के रूप में प्रत्यक्ष उपयोग। नवम पटल के श्लोक ११ में अंकित है कि दशपत्र (मणिपूर चक्र के दशदल) में बीस बार, द्वादशपत्र (अनाहत के १२ दल) में चौबीस बार मन्त्रजप करना चाहिये। षोडश पत्र (विशुद्धचक्र के १६ दल) में प्रत्येक पत्र (दल) पर चार बार जप करना चाहिये। यह अत्यधिक विकसित योगी ही कर सकते हैं। इसलिये इस श्लोक द्वारा योग तथा तन्त्र का अन्योन्य सम्बन्ध प्रमाणित हो जाता है।

ग्रन्थ बृहदाकार न होकर भी अत्यन्त विस्तृत रहस्य को अपने में संजोये हुये है। इसकी व्याख्या के लिये उद्यत होने पर कम से कम पाँच सौ पृष्ठों में इसका कलेवर परिवर्द्धित होने लगेगा, मेरा यह विश्वास है; परन्तु कालगत कारणों से यह कार्य सम्भव नहीं लगता। अर्थात् इस हेतु समयाभाव के कारण तथा वार्द्धक्यजनित शैथिल्य के कारण उद्यत नहीं हो पा रहा हूँ, तथापि यह दृढ विश्वास है कि आसन्न भविष्य में इस अप्रतिम ग्रन्थ के प्रति अनुत्सन्धित्सु अवश्य आकर्षित होंगे और भगवती की कृपा से वे इसमें सन्निवेशित रहस्यों का उद्घाटन भी कर सकेंगे।

निवेदक

एस. एन. खण्डेलवाल

विषयानुक्रमः

विषयाः पृष्ठाङ्काः

प्रथमः पटलः

भैरवनिरूपणम् १

द्वितीयः पटलः

ज्ञानयोगसप्तस्वर्गसप्तपातालइडादिनाडीयोनिमुद्रासनकथनम् ६

तृतीयः पटलः

वद्धयोनिमुद्रा, कालिकामन्त्रः, कालिकापूजाक्रमः, तारामन्त्रः, कालिकागायत्री, तारागायत्री, कालिकापूजासूत्रम्, कालिकासंक्षेपपूजा १०

चतुर्थः पटलः

तारापूजाप्रकारः, पञ्चतत्त्वशोधनम्, तारासंक्षेपपूजा २३

पञ्चमः पटलः

शिवमन्त्रः, पार्थिवपूजासूत्रम्, अष्टमूर्त्तिपूजासूत्रम् ३१

षष्ठः पटलः

कालिकामन्त्रवासना, महाविद्यापुरश्चरणम्, तारामन्त्रवासना ३९

सप्तमः पटलः

देहयोगकथनम्, देहे सप्तद्वीपादिकथनम्, ब्रह्माण्डपरिमाणम्, पृथिवीपरिमाणम्, सप्तसागरपरिमाणम्, देहे पीठवर्णनम् ४८

अष्टमः पटलः

देहे नाड़ीसङ्ख्याकथनम् ५४

नवमः पटलः

नवार्णमन्त्रवासना, दीर्घायुलाभकरणम्, षट्चक्रभावना, कुण्डलिन्याः मालारूपकत्वम्, मालाजपफलम्, षट्चक्रजपफलम्, भूतकात्यायनीमन्त्रः, भूतकात्यायनीध्यानम्, भूतकात्यायनीपूजाप्रयोगः, काकीचञ्चुमुद्रा, स्वल्पयोनिमुद्रा, दशावतारकथनम् ५८

❖

।।श्रीः।।

हर-गौरीसंवादात्मकं

तोडलतन्त्रम्

भाषाटीकासमन्वितम्

प्रथमः पटलः

(भैरवनिरूपणम्)

श्रीदेव्युवाच

ब्रूहि मे जगतां नाथ सर्वविद्यामय प्रभो।
महाविद्यासु सर्वासु पूज्यासु भुवनत्रये ।।१।।
एतासां दक्षिणे भावे नानारूपः पिनाकधृक्।
पृथक्पृथक् महादेव कथयस्व मयि प्रभो ।।२।।

भगवती पार्वती शिव से कहती हैं—हे सर्वविद्यामय! हे प्रभो! त्रिभुवनपूज्य समस्त महाविद्याओं में से प्रत्येक का पृथक्-पृथक् पूजाविधान कृपापूर्वक कहिये।

इन सभी महाविद्याओं के दाहिनी ओर नाना मूर्त्तियों को धारण करने वाले पिनाकधारी भैरव स्थित हैं। हे महादेव! हे प्रभो! मेरे प्रति कृपा करके इनकी भी पृथक्-पृथक् पूजाविधि कहिये।।१-२।।

श्रीशिव उवाच

शृणु चार्वङ्गि सुभगे कालिकायाश्च भैवरम्।
महाकालं दक्षिणाया दक्षभागे प्रपूजयेत् ।।३।।
महाकालेन वै सार्द्धं दक्षिणा रमते सदा।
ताराया दक्षिणे भागे अक्षोभ्यं परिपूजयेत् ।।४।।

श्री शिव कहते हैं—हे मनोहर अंगों वाली सौभाग्यवति! मैं कालिकासमूह के

भैरवों का वर्णन करता हूँ, सुनो। दक्षिणाकाली के भैरव हैं—महाकाल। दक्षिणाकाली के दाहिने इनका पूजन होता है। दक्षिणाकाली महाकाल के साथ क्रीड़ारत रहती हैं। तारा के भैरव हैं—अक्षोभ्य; इनका पूजन तारा के दाहिने होता है।।३-४।।

समुद्रमथने देवि कालकूटं समुत्थितम्।
सर्वे देवाः सदाराश्च महाक्षोभमवाप्नुयुः ।।५।।

हे देवि! समुद्रमन्थन के समय कालकूट विष उत्थित हुआ; जिसके कारण अपनी पत्नियों के साथ सभी देवता अत्यन्त उद्विग्न हो गये।।५।।

क्षोभादिरहितं यस्मात् पीत्वा हालाहलं विषम्।
अतएव महेशानि! अक्षोभ्यं परिकीर्त्तितम्।
तेन सार्द्धं महामाया तारिणी रमेते सदा ।।६।।

उन्होंने हलाहल का पान करके भी किसी प्रकार का क्षोभ-प्रदर्शन नहीं किया। हे महादेवि! इसी कारण वे त्रैलोक्य में अक्षोभ्य कहे गये हैं। उनके साथ महामाया तारिणी सदा क्रीड़ारत रहती हैं।।६।।

महात्रिपुरसुन्दर्याः दक्षिणे पूजयेच्छिवम्।
पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रञ्च प्रविवक्त्रे सुरेश्वरि ।।७।।

महात्रिपुरसुन्दरी के भैरव हैं—शिव। उनके दाहिनी ओर पञ्चमुख वाले शिव का पूजन किया जाता है। उनके प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र होते हैं।।७।।

तेन सार्द्धं महादेवी सदा कामकुतूहला।
अतएव महेशानि पञ्चमीति प्रकीर्त्तिता ।।८।।

महादेवी त्रिपुरा स्वेच्छा से कौतुकी होकर उनके साथ सदा क्रीड़ा करती हैं। हे महेश्वरि! इसीलिये 'पञ्चमी महाविद्या' उनकी संज्ञा है।।८।।

श्रीमद्भुवनसुन्दर्या दक्षिणे त्र्यम्बकं यजेत्।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले या चाद्या भुवनेश्वरी ।।९।।

जो आद्या महादेवी स्वर्ग, मृत्युलोक तथा पाताल में ईश्वरीरूप से 'भुवनेश्वरी' संज्ञा से विराजमान हैं, उनके भैरव हैं—त्र्यम्बक। उनके दाहिने त्र्यम्बक की पूजा करनी चाहिये।।९।।

एतासु रमते येन त्र्यम्बकस्तेन कथ्यते।
सशक्तिश्च समाख्यातः सर्वतन्त्रप्रपूजितः ।।१०।।

जो स्वर्गस्थ, पातालस्थ तथा मृत्युलोकस्थ तीनों अम्बाओं के साथ क्रीड़ा करते हैं, वे हैं—त्र्यम्बक। ये सभी तन्त्रों में प्रशंसित तथा शक्तियुक्त कहे गये हैं।।१०।।

भैरव्या दक्षिणे भागे दक्षिणामूर्त्तिसंज्ञकम्।
पूजयेत् परयत्नेन पञ्चवक्त्रं तमेव हि ॥११॥

इन देवी भैरवी के भैरव हैं—दक्षिणामूर्त्ति। भैरवी के दाहिने इन पाँच मुख वाले दक्षिणामूर्त्ति का पूजन करना चाहिये।।११।।

च्छिन्नमस्तादक्षिणांशे कबन्धं पूजयेच्छिवम्।
कबन्धपूजनात् देवि सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥१२॥

देवी छिन्नमस्ता के भैरव हैं—कबन्ध। छिन्नमस्ता के दाहिने 'कबन्ध' नामक शिव का पूजन करना चाहिये। हे देवि! कबन्ध की पूजा से साधक समस्त सिद्धियों का अधिपति हो जाता है।।१२।।

धूमावती महाविद्या विधवारूपधरिणी।
बगलाया दक्षभागे एकवक्त्रं प्रपूजयेत्।
महारुद्रेति विख्यातं जगत्संहारकारकम् ॥१३॥

देवी धूमावती महाविद्या विधवा हैं; अत: इनके भैरव नहीं हैं। बगलामुखी देवी के दाहिनी ओर इनके भैरव एकवक्त्र शिव की पूजा करनी चाहिये। ये ही जगत्-संहारक होने के कारण 'महारुद्र' कहलाते हैं।।१३।।

मातङ्गीदक्षिणांशे च मतङ्गं पूजयेच्छिवम्।
तमेव दक्षिणामूर्त्तिं जगदानन्दरूपकम् ॥१४॥

देवी मातंगी के भैरव हैं—मतंग। मातंगी के दाहिने 'मतंग' नामक शिव का पूजन करना चाहिये। ये ही जगत् को आनन्द देने वाले दक्षिणामूर्त्ति भी हैं।।१४।।

कमलाया: दक्षिणांशे विष्णुरूपं सदाशिवम्।
पूजयेत् परमेशानि स सिद्धो नात्र संशय: ॥१५॥

कमला के भैरव हैं—विष्णुरूप सदाशिव। कमला के दाहिने विष्णुरूप सदाशिव का पूजन करना चाहिये। हे परमेश्वरि! इनकी पूजा करने वाला नि:संदिग्ध रूप से अवश्य ही सिद्धि प्राप्त करता है।।१५।।

पूजयेदन्नपूर्णाया दक्षिणे ब्रह्मरूपकम्।
महामोक्षप्रदं देवं दशवक्त्रं महेश्वरम् ॥१६॥

अन्नपूर्णा के भैरव हैं—दश शिरधारी महेश्वर। अन्नपूर्णा के दाहिनी ओर ब्रह्मरूप महामोक्षप्रद तेज:स्वरूप दशवक्त्र महेश्वर की पूजा करनी चाहिये।।१६।।

दुर्गाया दक्षिणे देशे नारदं परिपूजयेत्।
नाकारः सृष्टिकर्त्ता च दकारः पालकः सदा।
रेफः संहारूपत्वान्नारदः परिकीर्त्तितः ॥१७॥

दुर्गा के भैरव 'नारद' की पूजा उनके दाहिनी ओर होती है। यहाँ (ये ऋषि नारद नही हैं) नारद का 'ना' = सृष्टिकर्त्ता। 'द' = पालक तथा 'र' = संहाररूप—ये नारद हैं। जो सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने वाले हैं, वे नारद कहे गये हैं।।१७।।

अन्यासु सर्वविद्यासु ऋषिर्यः परिकीर्त्तितः।
स एव तस्या भर्त्ता च दक्षभागे प्रपूजयेत् ॥१८॥

इनके अतिरिक्त अन्यान्य समस्त विद्याओं के जो-जो ऋषि कहे गये हैं, वे ही उन-उन विद्याओं के स्वामी भी हैं। उन-उन विद्याओं के दाहिने भाग में उन-उन ऋषियों का पूजन करना चाहिये।।१८।।

श्रीदेव्युवाच

या चाद्या परमा विद्या द्वितीय भैरवी परा।
त्रैलोक्यजननी नित्या सा कथं शववाहना ॥१९॥

श्रीदेवी कहती हैं कि प्रथमा महाविद्या हैं—दक्षिणाकाली तथा द्वितीया हैं—महाभैरवी तारा। ये त्रैलोक्य की जननी तथा नित्या हैं; फिर ये शववाहना कैसे हो गयीं।

श्रीशिव उवाच

या चाद्या परमेशानि स्वयं कालस्वरूपिणी।
श्रीशिवस्य हृदम्भोजे स्थिता संहाररूपिणी ॥२०॥

श्री शिव कहते हैं—हे परमेश्वरि! आद्याशक्ति काली स्वयं कालरूपिणी हैं। वे शिव के हृदयकमल पर संहारिणी होकर अवस्थित रहती हैं।।२०।।

अत एव महाकालो जगत्संहारकारकः।
संहाररूपिणी काली यदा व्यक्तस्वरूपिणी ॥२१॥
तदैव सहसा देवि! शवरूपः सदाशिवः।
तत्क्षणाच्चञ्चलापाङ्गि सा देवी शववाहना ॥२२॥

इसीलिये महाकाल जगत् के संहारक हैं। यह संहाररूपिणी काली जब मूर्त्ति

धारण करके स्थूलरूपेण बहिर्गत होती हैं, तभी इनके बाहर निकल जाने से सदाशिव शवरूप हो जाते हैं। हे चंचलापाङ्गि! उसी समय ये देवी शववाहना हो जाती हैं।।२१-२२।।

श्रीदेव्युवाच

शवरूपो महादेव मृतदेहः सदाशिवः ।
मृतदेहं महादेवः सलीलो वा कथं न हि ॥२३॥

देवी कहती हैं—हे महादेव! यदि सदाशिव शवरूप मृतदेह हो जाते हैं, तब मृतदेहरूप महादेव ही क्यों लीलायुक्त नहीं हो जाते?।।२३।।

श्रीशिव उवाच

यस्मिन् व्यक्ता महाकाली शक्तिहीनः सदाशिवः ।
शक्त्या युक्तो यदा देवि तदैव शिवरूपकः ।
शक्तिहीनः शवः साक्षात् पुरुषत्वं न मुञ्चति ॥२४॥

इति तोडलतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरगौरीसंवादे प्रथमः पटलः

श्रीशिव कहते हैं—जब महाकाली स्थूल रूप से आविर्भूत होती हैं (उनके वियोग से) उस समय सदाशिव शक्तिहीन हो जाते हैं। जब वे शक्तियुक्त होते हैं (जब हृदय में शक्ति रहती हैं) तब वे शिवरूप होते हैं। वे ही जगत् के सृष्टि, स्थिति एवं लय के कर्त्ता हैं। शक्तिहीन होने पर वे शवरूप भले ही हो जाते हों; किन्तु पुरुषत्व (शक्ति) का पूर्ण त्याग तब भी नहीं होता।।२४।।

हर-गौरीसंवादात्मक सभी तन्त्रों में उत्तम तोडलतन्त्र के
प्रथम पटल का अनुवाद समाप्त

●

द्वितीयः पटलः

(ज्ञानयोग-सप्तस्वर्ग-सप्तपाताल-इडादि-नाडी-योनिमुद्रासनकथनम्)

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि योगसारं समासतः।
ऊर्ध्वमूलमधःशाखं वृक्षाकारं कलेवरम् ।।१।।
ब्रह्माण्डे यानि तीर्थानि तानि सन्ति कलेवरे।
बृहद् ब्रह्माण्डं यद्रूपं तद्रूपं क्षुद्ररूपकम् ।।२।।

श्री शिव कहते हैं—हे देवि! मैं संक्षेप में योग की सारकथा को कहता हूँ, सुनो। यह देह वृक्ष के समान है, जिसकी जड़ें ऊपर तथा शाखायें नीचे हैं। अर्थात् इसका उत्कृष्ट अंश मस्तक है, जो समस्त शरीर का जड़ है। जैसे वृक्ष की शाखायें तने से निकलती हैं, वैसे ही नरदेह के स्कन्ध से शाखारूप हस्त-पादादि का आविर्भाव होता है। यही 'ऊर्ध्वमूलमधःशाखं' का तात्पर्यार्थ है।

ब्रह्माण्ड में जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी देह में अवस्थित हैं। जिस प्रकार का यह बृहद् ब्रह्माण्ड है, वैसा ही यह क्षुद्राकार देहब्रह्माण्ड भी है।।१-२।।

ब्रह्माण्डे वर्त्तते तीर्थं सार्द्धकोटित्रयात्मकम्।
द्विसप्ततिसहस्राणि प्रकाशं वीरवन्दिते ।।३।।

इस ब्रह्माण्ड में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। हे वीरवन्दिते! उनमे से बहत्तर हजार (७२०००) देखे जाते हैं।।३।।

चतुर्दशं तु तन्मध्ये तन्मध्ये त्रितयं शुभम्।
तन्मध्ये परमेशानि! महाधीरा च मुक्तिदा ।।४।।

उनमें भी चौदह (१४) अतिशुभ हैं एवं उनमें भी तीन शुभ हैं। हे परमेशानि! उनमें से भी महाधीरा मुक्तिप्रदा है।।४।।

वासुकी या महामाया भुजगाकाररूपिणी।
सार्द्धत्रिवलयाकारा पातालतलवासिनी ।।५।।

जैसे वासुकी नाग तीन फेरा लपेटकर पाताल के तल में रहता है, वैसे ही सर्परूपिणी महामाया (महाधीरा) साढ़े तीन फेरा लपेटे हुये पातालतल में (शरीर के निम्न देश में) वास करती है।।५।।

सप्त स्वर्ग परेशानि! क्रमेण शृणु सादरम्।
भूलोकञ्च भुवर्लोकं स्वर्लोकं महसन्तथा ॥६॥
जनलोकं तपश्चैव सत्यलोकं वरानने।
सप्तस्वर्गमिदं भद्रे पातालं शृणु यत्नतः ॥७॥

हे परमेश्वरि! अव मुझसे क्रम से सात स्वर्गों को सुनो। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महलोक, जनलोक, तपलोक एवं सत्यलोक—ये ही सात स्वर्ग हैं। हे वरानने! हे भद्रे! अब यत्नपूर्वक पाताल का वर्णन सुनो।।६-७।।

अतलं वितलं चैव सुतलञ्च तलातलम्।
महातलञ्च पातालं रसातलमतः परम् ॥८॥
रसातलाच्च सत्यान्तं महाधीरा प्रतिष्ठिता।
मेरुमध्यस्थिता नाड़ी महाधीरा च मुक्तिदा ॥९॥

अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, पाताल तथा रसातल—ये सात पाताल हैं। रसातल से लेकर सत्यलोक-पर्यन्त महाधीरा नाड़ी प्रतिष्ठित है। मेरुदण्ड के मध्य में स्थिता नाड़ी ही महाधीरा तथा मुक्तिदा है।।८-९।।

सत्यकेन महाविष्णुं शिवं ब्रह्माण्डसंज्ञकम्।
तस्य सन्दर्शनार्थाय वासुकी व्याकुला सदा ॥१०॥

सत्यलोक में ब्रह्माण्डसंज्ञक महाविष्णुरूप शिव की चिन्तना करनी चाहिये। कुलकुण्डलिनी वासुकी सदा इनके दर्शन के लिये व्याकुल रहता है।।१०।।

स्वर्गषट्कं भेदयित्वा उत्थिता वासुकी यदा।
सर्वाः समुद्रगामिन्य ऊर्ध्वस्रोता भवन्ति हि ॥११॥

जब वासुकी षट्स्वर्गरूप षट्चक्र का भेदन करके उत्थित होता है, तब समस्त नाड़ियों का प्रवाह ऊर्ध्व की ओर होने लगता है।।११।।

एवं क्रमेण देवशि! शरीरे नाडयः स्थिताः।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा मध्यवर्त्तिनी ॥१२॥
नाडीद्वयेन देवेशि समीरं पूरयेद्यदि।
ततस्तु प्राणमन्त्रेण कुण्डली च क्रमं चरेत् ॥१३॥

हे देवेशि! मेरुदण्ड के बाँयीं ओर इड़ा, दाहिनी और पिंगला तथा मध्य में सुषुम्ना नाड़ी स्थित है। इस क्रम से शरीर में नाड़ियाँ स्थित हैं। इन दोनों नाड़ियों में यदि वायु भर जाने के बाद प्राणमन्त्र से क्रमश: कुण्डली का चालन करना चाहिये।।१२-१३।।

सहस्रारे महापद्मे नित्ये चाव्ययपङ्कजे।
त्रासयुक्ता कुण्डलिनी प्रविशेन्नित्यमन्दिरम्।।१४।।

कुण्डलिनी जब भयभीत होकर अव्यय कमल (सहस्रार) महापद्मरूपी नित्य मन्दिर में प्रवेश करती है।।१४।।

सर्वाः पातालगामिन्य ऊर्ध्वस्रोता भवन्ति हि।
एतस्मिन् समये देवि! वर्णमालां विचिन्तयेत्।।१५।।

उस समय समस्त पाताल को जाने वाली नाड़ियाँ ऊर्ध्व में जाने लगती हैं। हे देवि! उस समय वर्णमाला का चिन्तन करना चाहिये। (सम्भवत: यहाँ मूल मन्त्र के जप का तात्पर्य है)।।१५।।

अष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रं ज्ञानेन सञ्जपेत्।
आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारे पुनः सुधीः।
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया।।१६।।

ज्ञानपूर्वक एक सौ आठ बार मूल मन्त्र का जप करके पुन: पूर्व मार्ग का आश्रयण करते हुये उसे मूलाधार में लाकर स्थापित करना चाहिये और वहीं पर अमृतवर्षा से षट्चक्र-स्थित देवता का तर्पण करना चाहिये।।१६।।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि योनिमुद्रासनं प्रिये।
उपविश्यासने मन्त्री प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
जानुद्वयं कराभ्याञ्च प्रकुर्याद् दृढबन्धनम्।।१७।।

हे प्रिये! अब अन्यरूप योनिमुद्रा का साधन सुनो। साधक पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर आसन पर बैठकर दोनों बाहु द्वारा जानुद्वय को बाँधे।।१७।।

ऋजुकायेन देवेशि! आजानुनासिकां नयेत्।
प्राणमन्त्रेण देवेशि! समीरं बहुयत्नतः।
पूरयेत् परमेशानि। किञ्चिद्वायुं न रेचयेत्।।१८।।

हे देवेशि! ऋजु देह करके (देह को झुकाकर) नासिका को जानु तक ले जाय। हे देवेशि! यत्न द्वारा प्राणमन्त्र से वायु का पूरण करे (मन्त्र की भावना करते-करते वायु को खींचे)। हे परमेश्वरि! वायु का तनिक भी रेचन न करे।।१८।।

ऋजुकायं परेशानि विपरीतं प्रयत्नतः ।
पूर्वोक्तेनैव विधिना अष्टोत्तरशतं जपेत् ॥१९॥
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया ।
आनयेत् तेन मार्गेण मूलाधारे वरानने ॥२०॥

हे परमेश्वरि! ऋजुदेह की स्थिति में पूर्वोक्त विधि के अनुसार यत्नपूर्वक विपरीत क्रमेण १०८ बार मूल मन्त्र का जप करना चाहिये।

हे वरानने! यहाँ अमृतधारा द्वारा षट्चक्र देवता का तर्पण करके पुनः उसी मार्ग से कुण्डलिनी को मूलाधार में ले जाना चाहिये।।१९-२०।।

अशेषरोगशमनं योनिमुद्रासनं प्रिये ।
बहु किं कथ्यते देवि! महाव्याधिविनाशनम् ॥२१॥

हे प्रिये! इस योनिमुद्रा से नानाविध रोग का उपशम हो जाता है। हे देवि! और क्या कहें, यह महाव्याधि का भी विनाशक है।।२१।।

बहु किं कथ्यते देवि मन्त्रचैतन्यकारणम् ।
आत्मसाक्षात्करी मुद्रा महामोक्षप्रदायिनी ॥२२॥

हे देवि! अधिक क्या कहा जाय? यह साधना मन्त्र को चैतन्य कर देती है। यह आत्मा का साक्षात्कार कराने वाली मुद्रा महान् मोक्षदायिका है।।२२।।

शतवक्त्रं यदि भवेत् तदा वक्तुं न शक्यते ।
पञ्चवक्त्रेण देवेशि किं मया कथ्यतेऽधुना ।
कुष्ठरोगविशिष्टेऽपि स भवेत् कामरूपकः ॥२३॥

इति तोडलतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरगौरीसंवादे द्वितीयः पटलः

हे देवेशि! मै इन पाँच मुखों से इसकी महिमा कैसे कह सकता हूँ, क्योंकि यदि मेरे यदि एक सौ मुख होते, तब भी इसकी महिमा को कह सकना सम्भव नहीं था। कुष्ठरोगी व्यक्ति भी इसके प्रभाव से कामदेव के समान रूपवान् हो जाता है।।२३।।

हर-गौरीसंवादात्मक सभी तन्त्रों में उत्तम तोडलतन्त्र के
द्वितीय पटल का अनुवाद समाप्त

तृतीयः पटलः

(बद्धयोनिमुद्रा, कालिकामन्त्रः, कालिकापूजाक्रमः, तारामन्त्रः, कालिकागायत्री, तारागायत्री, कालिकापूजासूत्रम्, कालिकासंक्षेपपूजा)

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव संसारार्णवतारक।
बद्धयोनिं महामुद्रां कथयस्व दयानिधे॥१॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे देवदेव महादेव! हे संसारसागर से तारने वाले! हे दयानिधे! कृपा करके बद्धयोनि नामक महामुद्रा को कहिये!।।१।।

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि बद्धयोनिं समासतः।
उपविश्यासने मन्त्री प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
गुदच्छिद्रे महेशानि! स्वलिङ्गाग्रं निवेशयेत्॥२॥

श्री शिव कहते हैं—हे देवि! मैं संक्षेप में यह मुद्रा बताता हूँ, सुनो। साधक पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुख करके आसन पर बैठ कर अपने गुह्यदेश के छिद्र को लिंग के अग्रभाग पर स्थापित करे। (यह क्रिया अत्यन्त कठिन है। योग्य योगगुरु के विना इस क्रिया को नहीं करना चाहिये)।।२।।

श्रोत्रे चैव तथा नेत्रे नासायाञ्च तथा मुखे।
अङ्गुष्ठादि महेशानि क्रमेण योजयेत् सुधीः॥३॥

हे महेशानि! इसी प्रकार साधक कान, नेत्र तथा मुख को यथाक्रम से अंगुष्ठप्रभृति अंगुलियों से संयुक्त करे।।३।।

नासिकायां मुखे चैव समीरं बहुयत्नतः।
पूरयेत् परमेशानि! किञ्चिदपि न रेचयेत्॥४॥

हे परमेशानि! तदनन्तर नासिका तथा मुख से अत्यन्त यत्न से वायु का पूरण अन्दर करे। तनिक भी वायु का रेचन न हो।।४।।

शब्दप्रत्यक्षतां कृत्वा वर्णमालां विचिन्तयेत्।
अष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रं तु प्रजपेत् सुधीः ॥५॥

नाद शब्द का अनुभव करके वर्णमाला का ध्यान करे। तदनन्तर १०८ बार मूल मन्त्र का जप करना चाहिये।।५।।

सोऽहंमन्त्रेण देवेशि! आनयेत्तेन वर्त्मना।
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया।
कृते फलं महेशानि कथयिष्यामि तेऽनघे ॥६॥

हे देवेशि! तदनन्तर वहाँ षट्चक्र देवता को सहस्रार पद्म से निःसृत अमृतधारा द्वारा तर्पित करे। सोऽहं मन्त्र द्वारा कुण्डलिनी देवी को इस मार्ग पर ले आये। हे महेश्वरि! हे अनघे! इस प्रकार करने से जो फल होगा, वह कहता हूँ।।६।।

श्रीदेव्युवाच

वद ईशान सर्वज्ञ सर्वतत्वविदांवर।
मन्त्रमार्गञ्च देवेश! कालिकायाः सुदुर्लभम् ॥७॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे ईशान, सर्वज्ञ, सर्व तत्त्वज्ञाताओं में श्रेष्ठ! कालिका की मन्त्रपद्धति अत्यन्त दुर्लभ है। अतः उस सुदुर्लभ पद्धति को कहें।।७।।

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि सदानन्दे कालिकामन्त्रमुत्तमम्।
यस्याः प्रसङ्गमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥८॥

श्री शिव कहते हैं—हे देवि, हे सदा आनन्द में स्थित! अब उत्तम कालीमन्त्र को कहता हूँ, सुनो। इसके प्रसंगमात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है।।८।।

शिवाद्यं विन्दुनादाढ्यं वामनेत्राग्निसंयुतम्।
सिद्धविद्या त्वियं भद्रे विद्याराज्ञी सुदुर्लभा ॥९॥

प्रथम है शिवाद्य, ककार बीज को वामनेत्र (ई) तथा अग्नि (र) से युक्त करके विन्दु-नाद से युक्त करे। यह कालिका का एकाक्षर मन्त्र है—'क्रीं'। हे भद्रे! यह सिद्ध विद्या है। यह दुर्लभ है तथा समस्त विद्यासमूहों में श्रेष्ठ है।।९।।

इदं बीजत्रयं चाद्यं गगनं विन्दुभूषितम्।
वामश्रवणसंयुक्तं द्वन्द्वञ्चापरकं शृणु ॥१०॥

हे देवि! कालिका का अन्य मन्त्र सुनो। प्रथमतः इस 'क्रीं' बीज को तीन बार, तदनन्तर विन्दुभूषित तथा वामकर्ण-संयुक्त गगनबीज दो संख्यक।।१०।।

ईशानं वह्निसंयुक्तं वामनेत्रेन्दुसंयुतम्।
द्वितयं परमेशानि सम्बोधनपदं ततः ॥११॥
पुनर्बीजत्रयं कूर्चं मायाद्वन्द्वञ्च ठद्वयम्।
द्वाविंशत्यक्षरं मन्त्रं विद्यावह्नि सुदुर्लभा ॥१२॥

तदनन्तर वह्नि (र) युक्त तथा वामनेत्र (ई) भूषित ईशान दो (दो हकार) अर्थात् 'ह्रीं ह्रीं' तदनन्तर कालिका का सम्बोधन पद अर्थात् 'दक्षिणे कालिके' तदनन्तर पुनः तीन बीज 'क्रीं क्रीं क्रीं' तदनन्तर दो कूर्चबीज 'हुं हुं' तदनन्तर दो मायाबीज 'ह्रीं ह्रीं' तदन्तर ठद्वय 'स्वाहा'—यही है वाईस अक्षरों वाला कालिका मन्त्र। मन्त्र का स्वरूप है—क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। यह है अग्निदेवता की सुदुर्लभ विद्या।।११-१२।।

वाग्भवाद्या महाविद्या श्रीकाली देवता स्मृता।
प्रणवाद्या महाविद्या देवता सिद्धिकालिका ॥१३॥

इस महाविद्या कालीमन्त्र के आदि में वाग्भव बीज लगाने से यह महाविद्या श्री काली देवता कही जायेगी। यदि इस मन्त्र के आदि में प्रणव लगाया जाय तब इसे महाविद्या सिद्धकाली देवता कहते हैं।।१३।।

निजबीजद्वयं कूर्चबीजैकं परमेश्वरि।
त्र्यक्षरी परमा विद्या चामुण्डा कालिका स्मृता ॥१४॥

हे परमेश्वरि! दो बार 'क्रीं' एवं एक कूर्चबीज 'हुं' लगाने से यह त्र्यक्षरी महाविद्या 'क्रीं क्रीं हुं' चामुण्डा कालिका कही जाती है।।१४।।

एतस्याः सदृशी विद्या सिद्धिदा नास्ति सुन्दरि।
यथा षडक्षरी विद्या तथा विद्या च त्र्यक्षरी ॥१५॥

हे सुन्दरि! इसके समान सिद्धिदा विद्या और कोई नहीं है। षडक्षरी विद्या 'क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा' जैसी सिद्धि देने वाली है, वैसी ही सिद्धिदा त्र्यक्षरी विद्या भी है।।१५।।

निजबीजत्रयं भद्रे श्मशानकालिके ततः।
पुनर्बीजत्रयं भद्रे वह्निकान्तां समुच्चरेत् ॥१६॥

हे भद्रे! निज बीज (क्रीं) को तीन बार कहने के बाद 'श्मशानकालिका' कहे, तदनन्तर पुनः वही बीजत्रय और अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) कहे। मन्त्र होगा—क्रीं क्रीं क्रीं श्मशानकालिके क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा।।१६।।

चतुर्दशाक्षरी विद्या त्रिषु लोकेषु पूजिता।
दक्षिणाकालिका सिद्धकालिका गुह्यकालिका ॥१७॥
श्रीकालिका भद्रकाली चामुण्डा कालिका परा।
श्मशानकालिका देवि! महाकालीति चाष्टधा ॥१८॥

यह चौदह अक्षरों की विद्या तीनों लोकों में पूजित है। दक्षिणाकाली, सिद्धकाली, गुह्यकाली, श्रीकाली, भद्रकाली, चामुण्डाकाली, श्मशानकाली तथा महाकाली—यह आठ प्रकार की काली हैं।।१७-१८।।

निजबीजं महेशानि सम्बोधनपदं ततः।
पुनश्च कालिकाबीजं ततो वह्निवधूं न्यसेत्।
इति चाष्टविधं मन्त्रं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥१९॥

हे महेशानि! निजबीज क्रीं, तदनन्तर कालिका सम्बोधन पद, तदनन्तर कालिका का बीज (क्रीं), तदनन्तर वह्निजाया (स्वाहा) का निवेश करे। मन्त्र होगा—क्रीं कालिका क्रीं स्वाहा। इस प्रकार ये आठ प्रकार के मन्त्र समस्त तन्त्रों में गोपित हैं।

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं महाकालिकायाः मन्त्रं परमगोपनम्।
ताराया मन्त्रराजन्तु श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥२०॥

श्रीगौरी देवी कहती हैं—परम गोपनीय महाकालिका का मन्त्र सुना। अब तारा के श्रेष्ठ मन्त्र को सुनने की इच्छा है।।२०।।

यस्या प्रसादमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति।
तन्मन्त्रं वद ईशान यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥२१॥

हे ईशान! जिनकी कृपामात्र से जीव संसारसागर में निमज्जित नहीं होना पड़ता, यदि मेरे प्रति आपका स्नेह हो तब उस तारा का मन्त्र कहिये।।२१।।

श्रीशिव उवाच

चन्द्रबीजं समुच्चार्य आद्यं वह्निसमागतम्।
वामनेत्रेन्दुसंयुक्त मन्त्रराजमिमं प्रिये।
एकाक्षरी महाविद्या त्रिषु लोकेषु पूजिता ॥२२॥

श्री शिव कहते हैं—हे प्रिये! सर्वप्रथम चन्द्रबीज (स) का उच्चारण करके इसे वामनेत्र (इ) तथा इन्दु से भूषित करके वह्निबीज (र) से संयुक्त करे। यह 'स्त्रीं' मन्त्र तारा का श्रेष्ठ मन्त्र है। यह एकाक्षरी महाविद्या तीनों लोकों में पूजित है।।२२।।

ईशानं विन्दुसंयुक्तं वामकर्णविभूषितम् ।
एकाक्षरी महाविद्या मन्त्रराजद्वितीयकम् ॥२३॥

ईशान (ह) को वह्निसंयुक्त एवं वामनेत्र (इ) को बिन्दु से भूषित करे। अब 'ह्रीं' एकाक्षरी मन्त्र का उद्धार होता है। यह द्वितीय मन्त्र है।।२३।।

शिवं वह्निसमारूढं वामनेत्रेन्दुसंयुतम् ।
आद्यबीजं द्वितीयञ्च अस्त्रमन्त्रं समुच्चरेत् ।
प्रणवाद्या यदा विद्या सोग्रतारा प्रकीर्त्तिता ॥२४॥

शिव (ह) को वह्नि (र) से संयुक्त तथा वामनेत्र को इन्दु (अनुस्वार) से भूषित करके आद्यबीज 'स्त्रीं' तथा द्वितीय बीज 'ह्रीं' को संयुक्त करके अस्त्रमन्त्र (फट्) का उच्चारण करे। अब 'ह्रीं स्त्रीं ह्रीं फट्' मन्त्र का उद्धार होता है। यह महाविद्या जब आदि में प्रणव से युक्त होती है, तब ये उग्रतारा हैं।।२४।।

वितारैकजटा प्रोक्ता महामोक्षप्रदायिनी ।
तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा महानीलसरस्वती ॥२५॥

जब यह मन्त्र वितार (प्रणव से रहित) हो तब यह एकजटा है। इस स्थिति में यह महान् मुक्तिप्रद हो जाता है। जब यह प्रणव तथा अस्त्र से रहित हो अर्थात् 'ह्रीं स्त्रीं ह्रीं' हो तब यह है—महानीलसरस्वती मन्त्र।।२५।।

वाग्भवाद्या यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी ।
श्रीबीजाद्या महाविद्या सदा लक्ष्मीप्रदायिनी ॥२६॥

जब इस मन्त्र के आदि में वाग्भव बीज (ऐं) हो तब यह वागीशत्व प्रदान करता है। जब इसके आदि में 'श्रीं' बीज युक्त हो, तब यह सर्वदा ऐश्वर्यप्रद होता है।।२६।।

मायाद्या परमा विद्या सदा सिद्धिप्रदायिनी ।
कूर्चबीजादिका चैषा शब्दराशिप्रकाशिनी ॥२७॥

जब इस मन्त्र के प्रारम्भ में 'ह्रीं' लगा हो, तब यह सदा सिद्धिप्रदायक हो जाता है एवं जब इस मन्त्र के प्रारम्भ में कूर्चबीज 'हुं' हो, तब यह शब्दराशि का प्रकाशक हो जाता है।।२७।।

गगनाद्या महाविद्या निर्वाणमोक्षदायिनी ।
प्रासादाख्या महाविद्या शिवसायुज्यदायिनी ॥२८॥

जब इस महामन्त्र के आदि में गगनबीज (हं) हो तब यह निर्वाण तथा मोक्षप्रद

होता है एवं जब इस महामन्त्र के आदि में प्रासादबीज 'हौं' लगा हो, तब यह शिव-सायुज्य प्रदान करने वाला होता है।।२८।।

प्राणबीजादिका चैषा वाञ्छासिद्धिप्रदायिनी।
कालिकाद्या महाविद्या मुक्तिदा सिद्धिदा तथा॥२९॥

जब इस विद्या के आदि में प्राणबीज (प्रां) जगा होता है, तब यह अभीष्टसिद्धि देने वाली होती ती है एवं जब इस महाविद्या के आदि में कालिका बीज (क्रीं) लगा होता है, तब यह मुक्ति तथा सिद्धि प्रदान करने वाली होती हैं।।२९।।

कालिकायाश्च ताराया आराधनमिहोच्यते।
प्रातरुत्थाय मन्त्रज्ञः सहस्रारे गुरुं यजेत्॥३०॥

अब यहाँ कालिका तथा तारा की आराधना कहते हैं। मन्त्र का ज्ञाता साधक प्रात:काल शय्या का त्याग करके सहस्रार में गुरुपूजा करे।।३०।।

षट्चक्रं भेदयित्वा तु चाष्टोत्तरशतं जपेत्।
ततः प्रणम्य विधिवत् स्नानकर्म समाचरेत्॥३१॥

षट्चक्र का भेदन करके १०८ बार मूल मन्त्र का जप करने के बाद प्रणाम के करने के उपरान्त विधिवत् स्नानकार्य करे।।३१।।

अद्येत्यादि समुच्चार्य सौरमासं समुच्चरेत्।
देवताप्रीतये पश्चात् स्नापयेच्छुद्धवारिणा॥३२॥

अद्येत्यादि कहकर सौरमास का उच्चारण करे, तदनन्तर 'देवताप्रीतये' कह कर शुद्ध जल से स्नान करना चाहिये।।३२।।

ॐकारञ्च समुच्चार्य गङ्गे चेति समुच्चरेत्।
यमुनेति ततः पश्चात् गोदावरि सरस्वति॥३३॥
नर्मदेति समुच्चार्य सिन्धुकावेरिसंयुतम्।
अस्मिन् जले च सन्निधिं कुरुशब्दमथो वदेत्॥३४॥

ॐकार का उच्चारण करके 'गंगे च' का उचारण करे। तदनन्तर 'यमुने गोदावरि सरस्वति नर्मदे सिन्धुकावेरी अस्मिन् जले सन्निधिं कुरु' कहे। यह जलशोधन मन्त्र है। यह कहते हुये स्नान करना चाहिये।।३३-३४।।

विशेष—इसका मन्त्र है—गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति, नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

आनयेदङ्कुशाख्येन रविसंयुक्तमण्डलात् ।
मुद्राचतुष्टयं देवि! दर्शयेद् बहुयत्नतः ॥३५॥

अंकुश नामक मुद्रा द्वारा रविमण्डल से तीर्थों का आवाहन करना चाहिये। हे देवि! अनेक सावधानी तथा प्रयत्नपूर्वक चार मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिये।।३५।।

रुद्रसंख्यं जपेन्मन्त्रमाच्छाद्य मीनमुद्रया ।
सूर्यायाभिमुखं तोयं निःक्षिप्य रविसंख्यया ॥३६॥
मूलमन्त्रं सम्मुच्चार्य क्षालयेच्चरणद्वयम् ।
चरणान्निःसृते तोये त्रिर्निमज्य जपेन्मनुम् ॥३७॥

मीनमुद्रा से आच्छादन करके रुद्रसंख्यक (११ बार) जप करना चाहिये। रविसंख्या अर्थात् बारह बार सूर्य की ओर मुख करके जलनिक्षेप करना चाहिये। अब मूल मन्त्र का उच्चारण करके दोनो चरणों का प्रक्षालन करना चाहिये। चरण से निस्तृत जल से तीन बार स्नान करके मूल मन्त्र के जप का विधान है।।३६-३७।।

मूलमन्त्रं त्रिर्जप्त्वा तु मुद्रया कुम्भसंज्ञया ।
जलादुत्थाय देवेशि तिलकं कुलवर्त्मनः ॥३८॥

हे देवेशि! अब कुम्भ नामक मुद्रा द्वारा तीन बार मूल मन्त्र का जप करके जल से उठकर कुलपरम्परा के अनुसार तिलक लगाये।।३८।।

आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैराचामेत् पाथसा ततः ।
वह्निजायान्विता मन्त्र विज्ञेयाः प्रणवादिकाः ॥३९॥

तदनन्तर आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्व से अर्थात् आचमन मन्त्र पढ़कर जल से आचमन करे। इन तीन तत्त्वों में प्रथमतः प्रणव (आत्मतत्त्व में प्रणव) तथा अन्त में (वह्निजाया) स्वाहा लगा कर आचमन करे। (ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा)।।३९।।

गङ्गे चेत्यादिना देवि तीर्थस्यावाहनं चरेत् ।
मूलेन दर्भया भूमौ त्रिवारं निःक्षिपेत् सुधीः ॥४०॥

हे देवि! 'गङ्गे च' इत्यादि मन्त्र पढ़कर तीर्थ का आवाहन करना चाहिये (यह मन्त्र इसी पटल के श्लोक ३३-३४ की व्याख्या में अंकित है)। आवाहन करते समय साधक को मूल मन्त्र पढ़कर कुश द्वारा तीन बार भूमि पर जल छिड़कना चाहिये।।४०।।

तज्जलेन सप्तवारमात्माभिषेकमाचरेत् ।
अङ्गन्यासं ततः कृत्वा वामहस्ते सुरेश्वरि ॥४१॥

गगनं वायुबीजञ्च वरुणं भूमिबीजकम्।
वह्निबीजं विन्दुयुक्तं त्रिवारं जपमाचरेत्॥४२॥
अनेन मनुना देवि तज्जलं चाभिमन्त्रितम्।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य सप्तधा तत्त्वमुद्रया।
अभिषेचनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः॥४३॥

उसी जल द्वारा सात बार अपनी आत्मा (देह) का अभिषेक करना चाहिये। हे सुरेश्वरि! तदनन्तर अंगन्यास करके वाम हस्त में जल लेकर विन्दुयुक्त गगनबीज (हं), वायुबीज (यं), वरुणबीज (वं), पृथ्वीबीज (लं) तथा वह्निबीज (दं) का तीन बार जप करना चाहिये। हे देवि! पुनः इन्हीं मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल से मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये तत्त्वमुद्रा द्वारा अभिषेक (अपना) करने से साधक सभी पातकों से मुक्त हो जाता है।।४१-४३।।

शेषं जलं महेशानि दक्षहस्ते समानयेत्।
इड़या पूरयेत्तोयं क्षालयेद् देहमध्यगम्॥४४॥

हे महेश्वरि! शेष जल को दाहिने हाथ में लेकर (लेते समय) इड़ा में जल का पूरण करना चाहिये (इड़ा नाड़ी द्वारा इडा नासिका से) जल को खींचकर देह के अन्दर स्थित पापों का प्रक्षालन करना चाहिये।।४५।।

ततः पिङ्गलया देवि तत्तोयन्तु विरेचयेत्।
कृष्णरूपं तदुदकं पापरूपं विचिन्तयेत्॥४५॥

तदनन्तर इड़ा द्वारा आकृष्ट जल को पिंगला नासाछिद्र द्वारा बाहर निकालना (रेचन करना) चाहिये। उस समय यह भावना करनी चाहिये कि यह कृष्ण वर्ण का जल पापों के साथ बाहर निकल गया है।।४५।।

पुरतो वज्रपाषाणे फट्कारेण विनिक्षिपेत्।
हस्तं प्रक्षाल्य चाचम्य प्राणायामपुरःसरम्॥४६॥
तर्पयेत् कुलदेवञ्च सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत्।
देवतार्घ्यं ततः पश्चाद् गायत्रीं परमाक्षरीम्॥४६॥

तदनन्तर समुखस्थ वज्ररूप पाषाण पर उस जल को 'फट्' मन्त्र कहते हुये फेंक देना चाहिये। तदनन्तर हाथ धोकर आचमन, प्राणायाम करने के उपरान्त कुलदेवता का तर्पण करके सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर देवता को अर्घ्य देकर परमाक्षरी गायत्री का जप करना चाहिये।।४६-४७।।

प्रणवञ्च समुद्धृत्य कालिकायै ततो वदेत्।
विद्महे इति संलिख्य श्मशानञ्च समुद्धरेत् ॥४८॥
वासिनीं ङेयुतां देवि धीमहीति ततो वदेत्।
तन्नो घोरे महेशानि प्रजपेत्तु प्रचोदयात् ॥४९॥

गायत्री की उद्धारप्रक्रिया बताते हैं—पहले प्रणव का उच्चारण करके चतुर्थी विभक्तियुक्त 'कालिकायै' कहे। तदनन्तर 'विद्महे' का उच्चारण करके 'श्मशान' शब्द का उच्चारण करे। तदनन्तर चतुर्थी विभक्तियुक्त वासिनी (वासिन्यै) का उच्चारण करके 'धीमहि' करे। हे महेश्वरि! तदनन्तर 'तन्नो घोरे प्रचोदयात्' कहने से गायत्री का उद्धार होता है। यह कालिकागायत्री तदनुसार इस प्रकार है—'ॐ कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि, तन्नो घोरे प्रचोदयात्।।४८-४९।।

गायत्री प्रपठेद्धीमान् त्रिवारं जलमुत्क्षिपेत्।
ततो जपेन्महामन्त्रं गायत्रीं परमाक्षरीम् ॥५०॥

धीमान् साधक गायत्री का पाठ करने के उपरान्त तीन बार जल का उत्क्षेपण करके महामन्त्र परमाक्षरी गायत्री का जप करना चाहिये।।५०।।

अङ्गन्यासं ततः कृत्वा आचम्य परमेश्वरि।
इष्टदेवीं महेशानि! ध्यायेत्तु रविमण्डले ॥५१॥

हे परमेश्वरि! तत्पश्चात् अंगन्यास करके आचमनोपरान्त रविमण्डल में इष्टदेवी का ध्यान करना चाहिये।।५१।।

द्वितीयास्तु (तारामहाविद्या)—

ॐ तारायै विद्महे इति महोग्रायै ततो वदेत्।
धीमहीति ततः पश्चात्तन्नो देवि प्रचोदयात् ॥५२॥

द्वितीय महाविद्या तारा की गायत्री है। 'ॐ तारायै विद्महे' कहकर 'महोग्रायै' कहने के पश्चात् 'धीमहि' कहकर 'तन्नो देवि प्रचोदयात्' कहे। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—ॐ तारायै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नो देवि प्रचोदयात्।।५२।।

प्राणायामं ततः कृत्वा चाष्टोत्तरशतं जपेत्।
सूत्राकारेण देवेशि! पूजाविधिरिहोच्यते ॥५३॥

तदनन्तर प्राणायाम करके १०८ बार मन्त्रजप करना चाहिये। हे देवि! अब सूत्राकार अर्थात् संक्षेप रूप से पूजाविधि कहता हूँ।।५३।।

स्वास्तिं वाच्य च सङ्कल्प्य घटं संस्थाप्य यत्नतः ।
मन्त्रेणाचमनं कार्यं सामान्यार्घ्यं ततो न्यसेत् ।।५४।।

स्वस्तिवाचन तथा संकल्प करके यत्नपूर्वक घटस्थापन करने के पश्चात् मन्त्र से आचमन करके सामान्यार्घ्य-स्थापन करना चाहिये।

विशेष—यहाँ आचमनोपरान्त सामान्यार्घ्य का विधान है; किन्तु आगमतत्त्वविलास में आचमनोपरान्त वाम हस्त में जल लेकर उससे आसन का अभ्युक्षण, तदनन्तर आसन पर बैठना, तत्पश्चात् मन्त्र से पादप्रक्षालन तथा शिखाबन्धन करने के पश्चात् पूर्ववत् आचमन का विधान वर्णित है।।५४।।

तज्जलैर्द्वारमभ्युक्ष्य द्वारपूजां समाचरेत् ।
त्रिविधं विघ्नमुत्सार्य भूतापसरणं ततः ।
आसनञ्च समभ्यर्च्य गुरुदेवं नमेत् सुधीः ।।५५।।

सामान्यार्घ्य जल द्वारा अभ्युक्षण करके द्वारपूजन का अनुष्ठान करना चाहिये। तत्पश्चात् तीनों प्रकार के विघ्नों का उत्सारण करके भूतापसारण करना चाहिये। तत्पश्चात् आसनपूजा करके गुरुपंक्ति को प्रणाम करना चहिये।।५५।।

करशुद्धिञ्च तालञ्च त्रयं दिग्बन्धनं ततः ।
वह्निना वेष्टनं कार्यं भूतशुद्धिमथाचरेत् ।।५६।।

तत्पश्चात् करशुद्धि, तालत्रय तथा दिग्बन्धन करके स्वदेह का वह्नि द्वारा वेष्टन करना चाहिये। तदनन्तर भूतशुद्धि का आचरण करना चाहिये।।५६।।

मातृकायाः षडङ्गञ्च कुर्यादान्तरमातृकाम् ।
मातृकाध्यानमाचर्य बाह्ये तु मातृकां न्यसेत् ।।५७।।

तत्पश्चात् मातृका का ध्यान करके अन्तर्मातृका न्यास तथा बाह्य मातृकान्यास करना चाहिये (वीरतन्त्र के अनुसार वर्णन्यास में मातृकाओं को अनुस्वारयुक्त करके न्यास करना चाहिये। कालीतन्त्र में अनुस्वार के विना ही वर्णों का न्यास करने को कहा गया है। अतः इच्छानुरूप अथवा गुरुपरम्परानुरूप अनुस्वारयुक्त अथवा अनुस्वाररहित मातृकान्यास करना चाहिये)।।५७।।

पीठन्यासं ततः कृत्वा प्राणायामं समाचरेत् ।
ऋष्यादिकं कराङ्गञ्च वर्णन्यासं समाचरेत् ।।५८।।

तदनन्तर पीठन्यासोपरान्त प्रणाम करना कर्तव्य है। तत्पश्चात् मूल मन्त्र से ऋष्यादि न्यास, कराङ्ग न्यास एवं वर्ण न्यास करना चाहिये।।५८।।

षोढान्यासं ततो देवि व्यापकं तदनन्तरम्।
एवं समाहितमनास्तत्त्वन्यासं समाचरेत्॥५९॥

हे देवि! तत्पश्चात् षोढ़ा न्यास एवं तदनन्तर व्यापक न्यास करना चाहिये। इसी प्रकार एकाग्रचित्त होकर तत्त्वन्यास करना चाहिये।।५९।।

बीजन्यासं ततो देवि! व्यापकं विन्यसेत् सुधीः।
मूलेन सप्तधा ध्यानं मानसैः पूजनं चरेत्॥६०॥

हे देवि! तत्पश्चात् साधक को बीजन्यास तथा मूल मन्त्र से सात प्रकार का व्यापक न्यास सम्पन्न करके ध्यान एवं मानस पूजन का अनुष्ठान करना चाहिये।।६०।।

विशेषार्घ्यं पीठपूजां पुनर्ध्यानं सनेत्रकम्।
मुद्रादिदर्शनं कार्यमावाहनषडङ्गकम्॥६१॥

तत्पश्चात् विशेषार्घ्य-स्थापन एवं पीठपूजा करने के उपरान्त पुनः ध्यान तथा चक्षुदान करके मुद्रादि का प्रदर्शन करने के उपरान्त आवाहन एवं षडङ्गन्यास सम्पन्न करना चाहिये।।६१।।

धेन्वादिकं ततः प्राणप्रतिष्ठां मूलपूजनम्।
आज्ञाप्रार्थनमङ्गानि काल्यादीन् परिपूजयेत्॥६२॥
ब्राह्म्यादीनसिताङ्गादीन् महाकालं प्रपूजयेत्।
खड्गादीन् गुरुपङ्क्तिञ्च पुनर्देवीं प्रपूजयेत्॥६३॥

तदनन्तर धेनु आदि मुद्रा प्रदर्शित करके प्राणप्रतिष्ठा एवं मूल देवता का पूजन करके उनसे आज्ञा लेकर काली-प्रभृति अंगदेवगण का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मी-प्रभृति शक्तियों का, असितांग आदि भैरवों का तथा महाकाल का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् खड्गादि एवं गुरुपंक्ति का पूजन करने के पश्चात् पुनः देवी का पूजन करना चाहिये।।६२-६३।।

बलिदानं ततो होमं प्राणायामं ततो जपम्।
जपं समर्पयेद्धीमान् प्राणायामं ततश्चरेत्॥६४॥

तत्पश्चात् बलिदान, होम, प्राणायाम करके जप करना चाहिये। धीमान् साधक को जपसमर्पण करने के पश्चात् पुनः प्राणायाम करना चाहिये।।६४।।

एतस्मिन् समये देवि कारणादीन् समाचरेत्।
अर्घ्यं दत्त्वा महेशानि चात्मानञ्च समर्पयेत्॥६५॥

हे देवि! इसी समय पूजा-हेतु कारणप्रभृति का आनयन करना चाहिये। तत्पश्चात् हे महेश्वरि! अर्घ्यदान करके आत्मसमर्पण भी करना चाहिये।।६५।।

स्तुतिञ्च कवचं स्मृत्वा चाष्टाङ्गं प्रणमेत् सुधीः ।
शिवोऽहमिति सञ्चिन्त्य संहारेण विसर्जयेत् ।
ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा चाण्डाल्युच्छिष्टपूर्विकाम् ।।६६।।

तदनन्तर साधक को स्तुति एवं कवच का पाठ करके साष्टांग प्रणाम करने के उपरान्त 'मैं शिव हूँ' यह चिन्तन करते हुये ईशान कोण में त्रिकोण मण्डल बनाकर 'ॐ उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः' कहकर संहारमुद्रा द्वारा विसर्जन करना चाहिये।।६६।।

अर्घ्यं सन्धार्य शिरसि चन्दनन्तु ललाटके ।
नैवेद्यं किञ्चित्स्वीकृत्य विहेरच्च निजेच्छया ।।६७।।

तत्पश्चात् मस्तक पर अर्घ्य एवं ललाट पर चन्दन धारण करके कुछ नैवेद्य ग्रहण करने के बाद अपनी इच्छानुसार विचरण करना चाहिये।।६७।।

संक्षेपपूजामथवा कुर्यान्मन्त्री समाहितः ।
आदावृष्यादि विन्यस्य करशुद्धिस्ततः परम् ।।६८।।

अथवा साधक को सावधान होकर संक्षिप्त पूजन करना चाहिये। प्रथमतः ऋष्यादि न्यास करने के पश्चात् करशुद्धि करनी चाहिये।।६८।।

अङ्गुलीव्यापकन्यासौ हृदादिन्यास एव च ।
तालत्रयञ्च दिग्बन्धः प्राणायामस्ततः परम् ।।६९।।

तत्पश्चात् करन्यास, व्यापकन्यास, हृदयादिन्यास करके तालत्रय बजा कर दिग्बन्धन करने के उपरान्त प्राणायाम करना चाहिये।।६९।।

ध्यानं मानसयागञ्च अर्घ्यस्थापनमेव च ।
पीठपूजां पुनर्ध्यानं ततश्चावाहनं चरेत् ।।७०।।

तदनन्तर देवी का ध्यान एवं मानसपूजन करके विशेषार्घ्य-स्थापन करने के पश्चात् पीठपूजन करके पुनः ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् पीठपूजा तथा पुनः ध्यान का तात्पर्य यह है कि साधक का ध्यान देवी-पूजा के उपक्रमों में लगा रहे। विशेषार्घ्य-स्थापनार्थ ध्यान, मानस याग, पुनः ध्यान से शुद्ध वृत्ति प्राप्त करने के अनन्तर आवाहन करना चाहिये।।७०।।

जीवन्यासं ततः कृत्वा पूजयेत् परदेवताम् ।

अङ्गपूजाञ्च काल्यादीन् ब्राह्ययादींश्चाष्टभैरवान्।
महाकालं पूजयित्वा गुरुपंक्तिं यजेत्ततः ।।७१।।

तत्पश्चात् जीवन्यास (प्राण-प्रतिष्ठा) करके परदेवता का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् कालीप्रभृति अंगदेवता, ब्राह्मी-प्रभृति शक्ति तथा असितांग-प्रभृति भैरवगण एवं महाकाल का पूजन करके गुरुपंक्ति का पूजन करना चाहिये।।७१।।

खड्गादीन् पूजयित्वा तु पुनर्देवीं प्रपूजयेत्।
प्राणायामं ततः कृत्वा प्रजपेत् साधकाग्रणीः ।।७२।।

तत्पश्चात् खड्गादि अस्त्रसमूह का पूजन करके पुनः देवी पूजन करना चाहिये। अब साधक को प्राणायाम करके यथाशक्ति मूल मन्त्र का जप करना चाहिये।।७२।।

देव्या हस्ते जपफलं समर्पणमथाचरेत्।
प्राणायामं ततः कृत्वा चाष्टाङ्गं प्रणमेत् सुधीः ।।७३।।

अब देवी के करकमलों में जप-फल समर्पित करके प्राणायाम के पश्चात् देवी के सम्मुख साष्टाङ्ग प्रणत हो जाना चाहिये।।७३।।

स्तुतिञ्च कवचं स्मृत्वा विशेषार्घ्यं प्रदापयेत्।
आत्मसमर्पणं कृत्वा संहारेण विसर्जयेत् ।।७४।।

अब स्तुति तथा कवच को पढ़कर विशेषार्घ्य प्रदान करके आत्मसमर्पण करते हुये संहारमुद्रा के प्रदर्शन द्वारा देवी का विसर्जन करना चाहिये।।७४।।

ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा चाण्डाल्युच्छिष्टपूर्विकाम्।
नैवेद्यं किञ्चित् स्वीकृत्य विहरेच्च निजेच्छया ।।७५।।

इति तोडलतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हर-गौरीसंवादे तृतीयः पटलः

यह संहारमुद्रा विसर्जन कार्य इस प्रकार करना चाहिये—आत्मसमर्पण करने के उपरान्त ईशान कोण में त्रिकोण मण्डल बनाकर 'ॐ उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः' द्वारा संहारमुद्रा प्रदर्शन-पूर्वक देवी कर विसर्जन करके (अनुष्ठान सम्पन्न हो जाने पर) इच्छानुसार विचरण करना चाहिये।।७५।।

हर-गौरीसंवादात्मक सभी तन्त्रों में उत्तम तोडलतन्त्र के
तृतीय पटल का अनुवाद समाप्त

●

चतुर्थः पटलः

(तारापूजाप्रकारः, पञ्चतत्त्वशोधनम्, तारासंक्षेपपूजा)

श्रीदेव्युवाच

श्रुत्वा पूजा कालिकायास्ताराया वद साम्प्रतम्।
यस्याः प्रसङ्गमात्रेण वाचश्चित्तायते नृणाम् ॥१॥

देवी कहती हैं—कालिका की पूजनपद्धति का मैंने श्रवण कर लिया। अब तारा की पूजापद्धति का विवेचन कीजिये; जिसके प्रसङ्गमात्र से ही लोगों की वाणी एवं चित्त में एकाकारता हो जाती है।।१।।

शृणु चार्वङ्गि सुभगे तारायाः पूजनं महत्।
मन्त्रेणाचमनं कृत्वा गुरुदेवं नमेत्ततः ॥२॥

ईश्वर कहते हैं—हे मनोहर अंगों वाली! हे सौभाग्यवति! तुम तारा की महापूजा पद्धति को सुनो। प्रथमत: तारा के आचमनमन्त्र से आचमन करने के उपरान्त गुरुदेव को नमस्कार करना चाहिये।।२।।

जलं संशोध्य हस्तौ च क्षालयेत्ततः।
मन्त्रेणाचमनं कृत्वा ततः पीठं विचिन्तयेत् ॥३॥

तदनन्तर जलशुद्धि करके हाथ तथा पैर धोकर पुन: मन्त्र से आचमन करके पीठ का ध्यान करना चाहिये।।३।।

विशेष—यहाँ आचमनादि के मन्त्र अंकित नहीं हैं; अत: मेरे द्वारा अनूदित ग्रन्थ 'आगमतत्त्वविलास' में ताराप्रकरण देख कर तदनुसार विधान करना चाहिये।

शिखां बद्ध्वा ततो देवि त्रिविधं विघ्ननाशनम्।
भूम्यासनञ्च संशोध्य वस्त्रे ग्रन्थिं विधाय च ॥४॥

हे देवि! तदनन्तर शिखाबन्धन करके तीन प्रकार के विघ्नों का नाश करना चाहिये; साथ ही भूमि तथा आसनशोधन करके वस्त्र में ग्रन्थिबन्धन करना चाहिये।।४।।

वाक्कायशोधनं कृत्वा ततः पुष्पविशोधनम्।
यन्त्रं कृत्वा साधकेन्द्रः सामान्यार्घ्यञ्च विन्यसेत् ॥५॥

तदनन्तर वाणी एवं देह का शोधन करके पुष्पशुद्धि करनी चाहिये। इसके बाद साधक को श्रेष्ठ यन्त्र का निर्माण करके सामान्यार्घ्य का स्थापन करना चाहिये।।५।।

द्वारपालांश्च सम्पूज्य पीठपूजां समाचरेत्।
पीठशक्तीश्च लक्ष्म्याद्यास्ततः पीठमनुं जपेत्॥६॥

तदनन्तर द्वाररक्षक द्वारदेवतागण का पूजन करके पीठपूजा करने के बाद लक्ष्मी-प्रभृति पीठशक्तियों का पूजन करके पीठमन्त्र का जप करना चाहिये।।६।।

भूतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि विशेषमिह यद्भवेत्।
कूर्चयुक्तेन हंसेन पूरकेण सुरेश्वरि॥७॥
कुण्डल्या सह चात्मानं चतुर्विंशतिबीजकम्।
तत्र लीनानि देवेशि परमात्मनि साधकः॥८॥

हे सुरेश्वरि! अब भूतशुद्धि को कहता हूँ। इस तारा की भूतशुद्धि में जो विशेष है, वह कहता हूँ। साधक को 'हुं' से युक्त हंसमन्त्र का पाठ करके पूरक द्वारा कुण्डलिनी एवं अपने जीवात्मा को सहस्रदलस्थ परमात्मा के साथ युक्त करके उस परमात्मा में चौबीस तत्त्वों के साथ जीवात्मा को लीन करने की भावना करनी चाहिये।।७-८।।

मायया सन्दहेत् पापं पुरुषं कज्जलप्रभम्।
कुम्भकेन वरारोहे भस्म कुर्याद् विचक्षणः॥९॥

मायाबीज 'ह्रीं' द्वारा कज्जलतुल्य पापपुरुष का दहन करना चाहिये। हे वरारोहे! विचक्षण साधक को कुम्भक के द्वारा उसे भस्म कर देना चाहिये।।९।।

वधूबीजेन देवेशि! भस्मना सह रेचयेत्।
पूरकेण तु कूर्चेन ललाटेऽमृतसञ्चयम्॥१०॥

हे देवेशि! वधूबीज 'स्त्रीं' द्वारा भस्म के साथ उसका रेचन करना चाहिये अर्थात् बाहर कर देना चाहिये। कूर्चबीज 'हुं' से पूरक करते हुये यह भावना करनी चाहिये कि ललाट में अमृत का सञ्चय हो रहा है।।१०।।

चिन्तयेत् परमेशानि कुम्भकेनाऽमृताम्बुधिम्।
आं ह्रीं क्रों वह्निजायान्तं हृदि चैकादशं जपेत्॥११॥

हे परेशानि! कुम्भक द्वारा अमृतसागर की भावना करनी चाहिये तथा हृदय में जिसके अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) लगा हो, ऐसे 'आं ह्रीं क्रों' का ग्यारह बार जप करना चाहिये अर्थात् 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा' का जप करना चाहिये।।११।।

ततश्च चिन्तयेद् धीमाना:काराद्रक्तपङ्कजम्।
तस्योपरि पुनर्ध्यायेट्टाङ्कारात् श्वेतपङ्कजम्।
तस्योपरि पुनर्ध्यायेद् हुङ्कारं नीलसन्निभम्॥१२॥

तदनन्तर बुद्धिमान साधक को 'आ:' से रक्तकमल का, उसके ऊपर 'टां'कार से श्वेतपद्म का एवं उसके ऊपर 'हुँ'काररूप नील वर्ण का ध्यान करना चाहिये।।१२।।

तस्योपरि पुनर्ध्यायेद् बीजभूषितकर्त्तृकाम्।
तस्योपरि परं बिन्दुं शिवरूपञ्च अव्ययम्॥१३॥

तदनन्तर पुन: हुँकार-भूषित कर्त्तृका का ध्यान करके उसके ऊपर अव्यय शिवरूप परबिन्दु का ध्यान करना चाहिये।।१३।।

वालुकाया: सहस्त्रैकभागं बिन्दुं सुदुर्लभम्।
बिन्दुमध्ये मणिद्वीपं शतयोजनविस्तृतम्॥१४॥

जैसे एक वालुकाकण के हजारवें भाग को अतिसूक्ष्म होने के कारण देख पाना अत्यन्त कठिन होता है, उसी प्रकार बिन्दु भी अतिशय सूक्ष्म होने के कारण दृष्टिगत होने योग्य नहीं है, तथापि उस बिन्दु के अन्तर्गत स्थित सौ योजन विस्तार वाले मणिद्वीप का ध्यान करना चाहिये।।१४।।

यथैकबुद्बुदे देवि प्रतिबिम्बं प्रपश्यति।
बिन्दुमध्ये परं ज्योतिर्बुद्बुदाकारमण्डलम्।
तथा निरीक्षणं कार्यं प्रकुर्याज्ज्ञानचक्षुषा॥१५॥

बिन्दु के मध्य में वुद्बुद के समान परम ज्योति की भावना करनी चाहिये। हे देवि! जैसे एक बुलबुले में ही प्रतिबिम्ब को सम्पूर्णत: देखा जा सकता है, वैसे ही ज्ञान-चक्षुओं से इस निरीक्षण कार्य को सम्यक् रूप से (ज्योतिभावना को) करना चाहिये।।१५।।

मणिद्वीपं तु तन्मध्ये सुवर्णवालुकामयम्।
परितो भावयेन्मन्त्री पारिजातं मनोहरम्।
मध्ये कल्पद्रुमं ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम्॥१६॥

इस बिन्दु में ऐसे मणिद्वीप की भावना करनी चाहिये, जहाँ कर बालू भी स्वर्णमयी है। उसके चारो ओर मनोहर पारिजात वृक्षों की भावना करनी चाहिये। इस मणिद्वीप के मध्य में कल्पवृक्ष की भावना करके स्वयं के तारिणीस्वरूप होने की भावना करनी चाहिये अर्थात् 'मैं ही तारिणी हूँ' ऐसा चिन्तन करना चाहिये।।१६।।

उद्यदादित्यसङ्काशं ज्योतिर्मण्डलमुत्तमम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारभूषितम् ॥१७॥
बहुचामरघण्टादिदेवकन्यासुशोभितम् ।
मन्दवायुसमायुक्तं गन्धधूपैरलङ्कृतम् ॥१८॥

चार द्वारों से युक्त सुवर्ण-निर्मित प्राचीर से विभूषित, अनेक चामर-घण्टा तथा देवकन्याओं द्वारा सुशोभित, मन्द-मन्द वायु से समन्वित एवं गन्ध तथा धूप द्वारा अलंकृत उदीयमान आदित्य के समान उत्तम ज्योतिर्मण्डल की भावना करनी चाहिये।

तन्मध्ये वेदिकां ध्यायेन्नानारत्नोपशोभिताम् ।
सुवर्णसूत्ररचितं चिन्तयेच्छत्रमुत्तमम् ॥१९॥

उस ज्योतिर्मण्डल के मध्य अनेक रत्नों से शोभित वेदी की भावना करते हुये उस वेदी पर सुवर्णसूत्रों से रचित उत्तम छत्र की भावना करनी चाहिये।।१९।।

तदधश्चिन्तयेन्मन्त्री रत्नसिंहासनं प्रिये ।
तत्र देवीं चिन्तयेच्च यथोक्तध्यानयोगतः ॥२०॥

हे प्रिये! साधक को उस रत्नवेदी के अधोभाग में रत्नसिंहासन की भावना करनी चाहिये एवं इसी सिंहासन पर पूर्वोक्त ध्यान द्वारा देवी का चिन्तन करना चाहिये।।२०।।

विशेष—इस ध्यान के सन्दर्भ में 'आगमतत्त्वविलास' ग्रन्थ में देवी के रूप का ध्यान ताराप्रकरण में देखना चाहिये।

योगसारोक्तकैर्देवि उपचारैः प्रपूजयेत् ।
प्राणायामं ततः कृत्वा ऋष्यादिन्यासमाचरेत् ॥२१॥

हे देवि! योगसारोक्त उपचारों द्वारा उनकी उत्तम रूप से पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करना चाहिये।।२१।।

वर्णन्यासं ततः कृत्वा कराङ्गन्यासमाचरेत् ।
तालत्रयं छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनं चरेत् ॥२२॥

तदनन्तर वर्णन्यास करके करन्यास एवं अंगन्यास करने के उपरान्त तालत्रय देकर चुटकी बजाते हुये दशो दिशाओं का दिग्बन्धन करना चाहिये।।२२।।

षोढान्यासं ततः कृत्वा व्यापकं तदनन्तरम् ।
विशेषार्घ्यञ्च संस्थाप्य पञ्चतत्त्वं विशोधयेत् ॥२३॥

तदनन्तर षोढ़ान्यास करके व्यापकन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् विशेषार्घ्य-स्थापन करके पञ्चतत्त्व का शोधन करना चाहिये।।२३।।

सुधादेवीं समानीय पञ्चीकरणमाचरेत्।
कुम्भे पुष्पं समादाय त्रिकोणे त्रिः प्रपूजयेत्॥२४॥

सुधादेवी (सुरादेवी) को लाकर पञ्चीकरण का अनुष्ठान करना चाहिये। त्रिकोण में कुम्भपुष्प से (कुम्भ में पुष्प का वर्णन आगमतत्त्वविलास में देखें) तीन बार पूजन करना चाहिये।।२४।।

वामदेवं त्रिधा चोक्त्वा खेचरीं दशधा जपेत्।
तथा चानन्दगायत्रीमृचं च त्रिर्जपेत् सुधीः॥२५॥

वामदेव ऋक् को तीन बार बोलकर दश बार खेचरी मन्त्र का जप करना चाहिये (यह गुरुगम्य है)। सुधी साधक को इस प्रकार सुरागायत्री ऋक् (आनन्दगायत्री) का तीन बार जप करना चाहिये।।२५।।

ब्रह्मशापं शुक्रशापं कृष्णशापं सुरेश्वरि।
दिग्जपान्नाशयेद्धीमान् ततो मन्त्रत्रयं जपेत्॥२६॥

हे सुरेश्वरि! बुद्धिमान साधक को दश बार मन्त्रजप से ब्रह्मशाप, शुक्रशाप तथा कृष्णशाप का नाश करके शापमोचन मन्त्र का तीन बार जप करना चाहिये।।२६।।

छुरिकाञ्चामृतञ्चैव श्रीतिरस्करिणीं प्रिये।
पावमानञ्च त्रिर्जप्त्वा शोधनादीन् समाचरेत्॥२७॥

हे प्रिये! छुरिकामन्त्र, अमृतमन्त्र, तिरस्करिणीमन्त्र तथा पावमान मन्त्र का तीन बार जप करने के बाद कारण (सुरा) द्रव्य का शोधनादि करना चाहिये।।२७।।

वारुणं त्रिर्जपेद् देवि चामृतं सप्तधा जपेत्।
विद्यातत्त्वे धेनुमुद्रां प्रदर्श्य मूलमष्टधा।
कुण्डलिनीं समुत्थाप्य शिवोऽहं भावयेत्ततः॥२८॥

हे देवि! वरुणमन्त्र का तीन बार जप करके सात बार अमृतमन्त्र का जप करना चाहिये। तदनन्तर विद्यातत्त्व द्वारा धेनुमुद्रा प्रदर्शित करके मूल मन्त्र का आठ बार जप करके कुण्डलिनी को उत्थित करके 'शिवोऽहं' की भावना करनी चाहिये।।२८।।

मांसं मीनं शोधयित्वा मुद्राशोधनमाचरेत्।
शक्तिञ्च कुलपुष्पञ्च शोधयेत् साधकोत्तमः॥२९॥

तदनन्तर साधकश्रेष्ठ को मांस तथा मत्स्य का शोधन करके मुद्राशोधन का अनुष्ठान करना चाहिये; साथ ही शक्ति (स्त्री) एवं कुलपुष्प (कन्या के रजः इत्यादि, इसका वर्णन आगमतत्त्वविलास में देखें) का शोधन करना चाहिये।।२९।।

देवान् पितॄन् ऋषींश्चैव तर्पयेदिष्टदेवताम्।
शोधितं द्रव्यमादाय विशेषार्घ्यं विनिक्षिपेत्॥३०॥

तदनन्तर देवताओं, पितरों एवं ऋषियों के साथ-साथ इष्टदेवता का भी तर्पण करना चाहिये। इसके बाद शोधित सुरा को लेकर विशेषार्घ्य में उसका निक्षेप करना चाहिये।।३०।।

ततो ब्रह्ममयं ध्यात्वा पूजाध्यानं समाचरेत्।
नासारन्ध्रात् समानीय पीठे पुष्पं निधाय च।
ततश्चावाहनं कृत्वा पञ्चमुद्राः प्रदर्शयेत्॥३१॥

तदनन्तर स्वयं का ब्रह्मरूप में ध्यान करके पूजा के देवता का अपने हृदय में ध्यान करना चाहिये। नासिका के रन्ध्र से पूज्य देवता को हृदय (ध्यान द्वारा यह भावना करके कि नासारन्ध्र से देवता आ रहे हैं) से बाहर लाकर पीठ पर पुष्पादि रखकर उनका आवाहन करते हुये पञ्चमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये।।३१।।

षडङ्गेन च सम्पूज्य पुनर्मुद्राः प्रदर्शयेत्।
जीवन्यासं ततः कृत्वा उपचारैः प्रपूजयेत्॥३२॥

देवी का षड़ङ्ग मन्त्र से पूजन करके पुनः मुद्राप्रदर्शन करना चाहिये। तदनन्तर जीवन्यास (प्राण-प्रतिष्ठा) करके उपचारों से पूजन करना चाहिये।।३२।।

षडङ्गानि च सम्पूज्य अक्षोभ्यं पूजयेदधः।
गुरुपङ्क्तिं पूजयित्वा दलमूलेषु पूजयेत्॥३३॥
महापूर्वांश्च काल्यादीन् यजेद्वैरोचनादिकान्।
पुनर्देवीं प्रपूज्याथ बलिं दद्याद्विचक्षणः॥३४॥

तत्पश्चात् देवी का षडंग पूजन करके अधोभाग के दाहिनी ओर अक्षोभ्य की पूजा करनी चाहिये। इसके बाद गुरुपंक्ति का पूजन करके दल के मूल में महाकाली-प्रभृति अष्टशक्ति का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर वैरोचन आदि का पूजन करने के पश्चात् साधक को बलि प्रदान करके पुनः देवी का पूजन सम्पन्न करना चाहिये।।३३-३४।।

प्राणायामं ततः कृत्वा मन्त्रध्यानं समाचरेत्।
जपं कृत्वा महेशानि देव्या हस्ते समर्पयेत्॥३५॥

तत्पश्चात् प्राणायाम करके मन्त्र का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रजप करके महेश्वरी के हाथों में उस जप का समर्पण करना चाहिये।।३५।।

प्राणायामं ततः कृत्वा तत्त्वस्वीकारमाचरेत्।
तस्यै दत्त्वा स्वयं पीत्वा प्रजपेत् साधकाग्रणीः ॥३६॥

तत्पश्चात् पुनः प्राणायाम करने के बाद सुरातत्त्व को ग्रहण करके साधकश्रेष्ठ को इस सुरा को देवी को प्रदान करने के उपरान्त स्वयं भी पान करके मन्त्र का जप करना चाहिये।।३६।।

पीत्वा पीत्वा जपित्वां च मुक्तः कोटिकुलैः सह।
प्रतिपात्रे जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरशतं सुधीः ॥३७॥
विशेषार्घ्यं प्रदातव्यमात्मानञ्च समर्पयेत्।
स्तुतिञ्च कवचं स्मृत्वा चाष्टाङ्गं प्रणमेत् सुधीः ॥३८॥
रुद्ररूपी स्वयं भूत्वा संहारेण विसर्जयेत्।
योनिमुद्रां ततो बद्ध्वा क्षमस्वेति विसर्जयेत् ॥३९॥

साधक बारम्बार उस सुरा का पान करके तथा जप करके अपनी करोड़ों पीढ़ियों को मुक्त कर देता है। तत्पश्चात् साधक को प्रत्येक पानपात्र में एक सौ आठ बार मूल मन्त्र का जप करना चाहिये। तदनन्तर साधक को स्तव एवं कवच का पाठ करके साष्टांग प्रणाम करते हुये विशेषार्घ्य-प्रदान के अनन्तर देवी के समक्ष आत्मसमर्पण करना चाहिये। अन्त में स्वयं की रुद्ररूप से भावना करके संहारमुद्रा द्वारा देवी का विसर्जन करना चाहिये। इसके बाद योनिमुद्रा का बन्धन करके 'क्षमस्व' का उच्चारण करते हुये विसर्जन करना चाहिये।।३७-३९।।

अङ्गन्यासं महेशानि प्राणायामं ततः परम्।
ऐशान्यां मण्डले कृत्वा निर्माल्येन प्रपूजयेत् ॥४०॥
निर्माल्यवासिनीं ङेऽन्तां चण्डेश्वर्यै नमो नमः।
निर्माल्यं धारयेच्छीर्षे चन्दनञ्च ललाटके ॥४१॥

हे महेश्वरि! तदनन्तर अंगन्यास तथा प्राणायाम करने के पश्चात् ईशान कोण में त्रिकोण मण्डल बनाकर 'ॐ निर्माल्यवासिन्यै चण्डेश्वर्यै नमो नमः' कह कर निर्माल्य द्वारा पूजन करने के उपरान्त अपने मस्तक पर निर्माल्य धारण करना चाहिये तथा मस्तक पर चन्दन लगाना चाहिये।।४०-४१।।

गुरुस्थाने लिखेद् यन्त्रं विचरेद् भैरवो यथा।
संक्षेपपूजनं देवि मानसं तत्त्ववर्जितम् ॥४२॥

तदनन्तर गुरुस्थान पर यन्त्र बनाकर भैरव के समान स्वच्छन्द होकर विचरण

करना चाहिये। हे देवि! पञ्चतत्त्वरहित मानस पूजन ही देवी की संक्षेप में पूजा है।।४२।।

अत्रोक्तमाचरेदत्र नान्यत् सञ्चारयेत् सुधीः ।
अन्यत्सञ्चारणाद् देवि क्रुद्धा भवति तारिणी ।।४३।।
तत्त्वज्ञानञ्च मानञ्च शक्तिमात्रे हि पार्वति ।
इत्येतत् कथितं देवि! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।४४।।

इति तोडलतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हर-गौरीसंवादे चतुर्थः पटलः

यहाँ पर इसी मानस पूजन का अनुष्ठान करना चाहिये; अन्य कुछ का अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। हे देवि! अन्य अनुष्ठान से देवी तारिणी क्रुद्ध हो जाती हैं। हे पार्वति! शक्तिमात्र में तत्त्वज्ञान तथा पूजा विहित है। इन सबको मैंने तुमसे कहा, अब और क्या सुनने की इच्छा है।।४३-४४।।

हर-गौरीसंवादात्मक सभी तन्त्रों में उत्तम तोडलतन्त्र के चतुर्थ पटल का अनुवाद समाप्त

पञ्चमः पटलः

(शिवमन्त्र:, पार्थिवपूजासूत्रम्, अष्टमूर्त्तिपूजासूत्रम्)

श्रीदेव्युवाच

त्वत्प्रसादान्महादेव पवित्राहं न चान्यथा।
शम्भुनार्थार्चनं देव श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम्॥१॥

देवी कहती हैं—हे महादेव! मैं आपकी कृपा से पवित्र हो गई हूँ; अन्य किसी प्रकार से पवित्र नहीं हुई हूँ। हे देव! अब इस समय शम्भुनाथ की पूजापद्धति को सुनने की मेरी इच्छा है।।१।।

श्रीशिव उवाच

शृणु पार्वति वक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
नकुलीशं समुद्धृत्य मनुस्वरविभूषितम्॥२॥
बिन्दुनादकलायुक्तं प्रासादाख्यं महामनुम्।
अस्य मन्त्रस्य माहात्म्यमूर्ध्वाम्नाये मयोदितम्॥३॥

श्री शिव कहते हैं—हे पार्वति! तुमने मुझसे जो पूछा है, उसे मैं कहता हूँ, सुनो! नकुलीश (ह) का उच्चारण करके मनुस्वर (चतुर्दश स्वर, औकार) द्वारा विभूषित करके उसे बिन्दु-नाद-कला द्वारा संयुक्त करने से प्रासाद नामक 'हौं' मन्त्र का उद्धार होता है। इसका माहात्म्य मैंने ऊर्ध्वाम्नाय में कहा है।।२-३।।

नमस्कारं समुद्धृत्य वान्तं नेत्रविभूषितम्।
वारुणं मुखवृत्तञ्च वायुं ललाटसंयुतम्॥४॥

पहले नमस्कार का उच्चारण करके वान्त (श) को दक्षिण नेत्र (इ) द्वारा एवं वारुण को (वकार को) मुखवृत्त (आ) से युक्त करने के बाद वायु (य) को ललाट (अ) ये युक्त करने से 'नम: शिवाय' इस पञ्चाक्षर मन्त्र का उद्धार होता है।।४।।

अयं पञ्चाक्षरो मन्त्रः पञ्चाम्नायफलप्रदः।
प्रणवादिर्यदा देवि तदा मन्त्रः षडक्षरः॥५॥

यह पञ्चाक्षर मन्त्र पञ्चाम्नाय में कथित फल को प्रदान करने वाला है। हे देवि!

यह पञ्चाक्षर मन्त्र ही आदि में प्रणव से युक्त होकर छ अक्षरों वाला शिवमन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' हो जाता है।।५।।

प्रासादाख्यं समुद्धृत्य अर्द्धनारीश्वराय च।
पुनः प्रासादमुद्धृत्य मन्त्रं परमगोपनम् ।।६।।

पहले प्रासाद मन्त्र का उच्चारण करने के बाद 'अर्द्धनारीश्वराय' कहकर पुनः प्रासाद मन्त्र का उच्चारण करने से 'हौं अद्धनारीश्वराय हौं' मन्त्र का उद्धार होता है, जो परम गोपनीय है।।६।।

एवं बहुविधाकारं विग्रहं मे नगात्मजे।
कण्ठे तु गरलं देवि न कलौ भावयेत्क्वचित् ।।७।।

हे पर्वतपुत्रि! मेरा इसी प्रकार अनेक मन्त्रात्मक विग्रह है। हे देवि! कलिकाल में किसी भी विग्रह के कण्ठ में विष की भावना नहीं करनी चाहिये।।७।।

यदिच्छेदात्मनो मृत्युं यदि उन्मत्तमिच्छति।
तदैव सहसा देवि नीलकण्ठमुपासते ।।८।।

यदि कोई अपनी मृत्यु की इच्छा करे अथवा उन्मत्त होना चाहे तभी उसे हठात् नीलकण्ठ की उपासना करनी चाहिये।।८।।

दुरदृष्टवशाद् देवि नीलकण्ठस्तवादिकम्।
करोति कारयेद्वापि मम हत्यां करोति सः ।।९।।

हे देवि! दुर्भाग्यवश यदि कोई नीलकण्ठ के स्तव-कवचादि का पाठ स्वयं करता अथवा दूसरों से कराता है, तो वह मेरी ही हत्या करता है।।९।।

अत एव महेशानि स पापिष्ठो न चान्यथा।
निषिद्धाचरणं पापं करोति यदि पामरः।
पुत्रदाराधनं तस्य नाशयन्ति न संशयः ।।१०।।

हे महेश्वरि! अन्य कोई कारण न होते हुये भी उपर्युक्त आचरण के फलस्वरूप वह पाप का भागी होता है। यदि वह पामर निषिद्धाचरणरूप (नीलकण्ठ नामजप अथवा स्तव-कवचादि का पाठरूप) पाप करता है, तो निश्चित रूप से उसकी स्त्री, पुत्र तथा वित्त का नाश हो जाता है।।१०।।

कण्ठे तु गरले देवि यदि पूजापरो भवेत्।
इह लोके दरिद्रः स्यान्मृते शूकरतां व्रजेत् ।।११।।

हे देवि! यदि कोई मेरे कण्ठ में विष की भावना करता है अर्थात् यदि कोई नीलकण्ठ की पूजा में रत होता है, तो वह इस लोक में दरिद्र होता है तथा मृत्यु के उपरान्त शूकरयोनि में जन्म ग्रहण करता है।।११।।

नीलकण्ठस्य यन्मन्त्रं यदि कुर्यात् पुरस्क्रियाम्।
पक्षान्तरे महेशानि तस्य मृत्युर्न चान्यथा ॥१२॥

हे महेश्वरि! नीलकण्ठ के मन्त्र का जो पुरश्चरण करता है, उसकी पन्द्रह दिनों के भीतर निश्चित रूप से मृत्यु हो जाती है।।१२।।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पार्थिवं शिवपूजनम्।
तत्रादौ परमेशानि गुरुदेवं नमेत् सुधीः ॥१३॥

हे देवि! अब मैं पार्थिव शिवपूजन को कहता हूँ। इस शिवपूजा को करने के पूर्व सुधी साधक को गुरु को प्रणाम करना चाहिये।।१३।।

ॐ हराय नमस्कारं मृत्तिकामाहरेत् सुधीः।
महेश्वराय नमस्कारं लिङ्गं निर्माय यत्नतः ॥१४॥

विद्वान् साधक को 'ॐ हराय नमः' मन्त्र से मृत्तिका को लाकर 'ॐ महेश्वराय नमः' मन्त्र से यत्नपूर्वक लिंग का निर्माण करना चाहिये।।१४।।

शूलपाणे इहोच्चार्य सुप्रतिष्ठितो भवेति च।
अनेन मनुना देवि! जीवन्यासो विधीयते ॥१५॥

'ॐ शूलपाणे इह' का उच्चारण करके 'सुप्रतिष्ठितो भव' कहकर जीवन्यास करना चाहिये। पूर्ण मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—ॐ शूलपाणे इह सुप्रतिष्ठितो भव। यही प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र है।।१५।।

हकारं विन्दुसंयुक्तं दीर्घयुक्तं षडङ्गकम्।
तस्य ध्यानं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहिता ॥१६॥

हकार को दीर्घ (आ, ई, ऊ, ऐ, औ तथा अः) से युक्त करके उसे विन्दुभूषित (हां, हीं, हूं, हैं, हौं, हंः) करने के बाद शिव का षडंग न्यास करना चाहिये। अब पार्थिव शिव का ध्यान कहता हूँ; संयत होकर श्रवण करो।।१६।।

शिवध्यानम्

ॐ ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।

पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥१७॥

(पुष्पाञ्जलि लेकर इस प्रकार ध्यान करना चाहिये) रजतगिरि के समान उज्ज्वल वर्ण सुन्दर चन्द्रखण्डरूप आभूषण से शोभित मस्तक वाले, रत्नभूषण से उज्ज्वल, हाथों में परशु, मृग, वर तथा अभय धारण करने वाले, प्रसन्न, पद्मासीन, चतुर्दिक् देवताओं से घिरे तथा उनसे स्तुत, व्याघ्रचर्म के परिधान वाले, विश्व के आदिभूत, विश्वबीज तथा असाधारण कारण, निखिल जन के भय का हरण करने वाले, पञ्चमुख, तीन नेत्रधारी महेश्वर का नित्य ध्यान करना चाहिये।।१७।।

पुष्पं शिरसि सन्धार्य मानसैः पूजनं चरेत्।
पुनर्ध्यात्वा महेशानि! शिवे पुष्पं निधाय च ॥१८॥
पिनाकधृगिति चोच्चार्य इहावह द्विधा वदेत्।
इह तिष्ठ ततो द्वन्द्वं सन्निधेहि द्वयं इह ॥१९॥

ध्यानान्त में पुष्पाञ्जलि के पुष्प को मस्तक पर रखकर मानसोपचार से पूजा का अनुष्ठान करना चाहिये। हे शिवे! हे महेश्वरि! अब पुनः पूर्वोक्त ध्यान करके शिवलिंग पर पुष्प चढ़ाकर 'पिनाकधृक् इहावह इहावह' का उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर दो बार 'इह तिष्ठ' कह कर दो बार ही 'इह सन्निधेहि' कहना चाहिये।।१८-१९।।

इह सन्नि ततो रुध्यस्वशब्दञ्च ततो वदेत्।
यावत् पूजां समुच्चार्य ततश्चैवं करोम्यहम् ॥२०॥

तत्पश्चात् 'इह सन्निरुध्वस्व' कहने के बाद 'यावत् पूजां करोम्यहम्' कहना चाहिये। पूर्ण मन्त्र है—इह सन्निरुध्यस्व यावत् पूजां करोम्यहम्।।२०।।

स्नानीयञ्च पशुपतिं ङेयुतञ्च नमश्चरेत्।
वेदाद्यं योजयेद्देवि ब्राह्मणः साधकोत्तमः ॥२१॥

हे देवि! ब्राह्मण साधकश्रेष्ठ चतुर्थी विभक्तियुक्त पशुपति अर्थात् 'पशुपतये' के बाद 'नमः' का उच्चारण करके अर्थात् 'पशुपतये नमः' के साथ वेदाद्य (ॐ) का योग करके 'ॐ पशुपतये नमः' मन्त्र से शिव को स्नानीय प्रदान करना चाहिये।।२१।।

एतत् पाद्यं महेशानि षडक्षरमनुं ततः।
नमस्कारं समुच्चार्य सर्वं दद्याद्विचक्षणः ॥२२॥

हे महेश्वरि! अब 'एतत् पाद्यं ॐ नमः शिवाय' कह कर साधक को समस्त पाद्य उपचार समर्पित करना चाहिये।।२२।।

पूजयित्वा महेशानि चाष्टमूर्त्तिं प्रपूजयेत्।
शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः।
महादेवश्च ईशानो ङेयुतं कुरु यत्नतः ॥२३॥
क्षितिं जलं तथा चाग्निं वायुं चाकाशमेव च।
यजमानं तथा सोमं सूर्यञ्च मूर्त्तिना सह ॥२४॥
सर्वत्र ङेयुतं कृत्वा पूजयेत् साधकोत्तमः।
प्रणवादिनमोऽन्तेन वामावर्त्तेन पूजयेत् ॥२५॥

हे महेश्वरि! उपचारों से पूजन करने के उपरान्त अष्टमूर्त्ति का पूजन करना चाहिये। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव एवं ईशान—इन आठो का चतुर्थी विभक्त्यन्त उच्चारण करते हुये इनके साथ क्रमशः क्षिति, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, सोम एवं सूर्य के साथ चतुर्थ्यन्त 'मूर्त्ति' (मूर्त्तये) लगाकर सबके आदि में प्रणव लगाते हुये अर्थात् ॐ शर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः, ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः, ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः, ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः, ॐ भीमाय यजमानमूर्त्तये नमः, ॐ पशुपतये आकाशमूर्त्तये नमः, ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः एवं ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नमः कहकर वामावर्त्त क्रम से उपर्युक्त अष्टमूर्त्तियों का पूजन करना चाहिये।।२३-२५।।

मूर्त्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः पूर्वादिक्रमयोगतः।
आग्नेयान्ताः प्रपूज्यास्ताः वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत्।
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा प्रजपेत्ततः ॥२६॥

पूर्वादि क्रम से आग्नेय कोण तक आठो कोणों में शिव की इन आठ मूर्त्तियों का पूजन करना चाहिये; किन्तु वेदी पर लिंग में केवल शिव का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार मन्त्रजप करना चाहिये।।२६।।

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥२७॥
ततस्तोयं समादाय जपं चैव समर्पयेत्।
मुखवाद्यं ततः कृत्वा चाष्टाङ्गं प्रणमेत् सुधीः ॥२८॥

तदनन्तर जल लेकर मूलोक्त श्लोक २७ को पढ़कर जप का समर्पण करना चाहिये। अर्थ है—तुम गोपनीय से गोपनीय की भी रक्षा करने वाले हो। तुम मेरे जप को ग्रहण करो, हे देव! हे महादेव! तुम्हारी कृपा से मुझे सिद्धि मिले। तदनन्तर साधक को मुख से वाद्य बजाकर साष्टांग प्रणाम करना चाहिये।।२७-२८।।

संहारेण महादेव क्षमस्वेति विसर्जयेत्।
एवं पूजा प्रकर्त्तव्या शक्तिमन्त्रान् यजेद्यदि ॥२९॥

संहारमुद्रा करके 'ॐ महादेव क्षमस्व' मन्त्र से विसर्जन करना चाहिये। शाक्त को भी इसी प्रकार से (शक्तिमन्त्र उपासना में भी) शिवपूजा करनी चाहिये।।२९।।

प्रासादादीन् महामन्त्रान् यदि दीक्षापरो भवेत्।
शक्तिदीक्षा न कर्त्तव्या कदाचिदपि मोहतः ॥३०॥

यदि शिवमन्त्र से साधक दीक्षित हो तब उसे प्रासादादि महामन्त्र की उपासना करनी चाहिये; कभी भी मोहवशात् शक्तिमन्त्र की दीक्षा उसे नहीं लेनी चाहिये।।३०।।

स शैव इति विख्यातः सर्वतन्त्रेश्वरो भवेत्।
अथातः सम्प्रवक्ष्यमि सूत्रं परमगोपनम् ॥३१॥

वह (ऐसा साधक) 'शैव' रूप से विख्यात होकर सभी तन्त्रों का अधीश्वर होता है। अब इसके बाद परम गुप्त पूजासूत्र कहा जाता है।।३१।।

हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक्।
पशुपतिः शिवश्चैव महादेव इति क्रमात् ॥३२॥

मृत्तिका लाते समय हर, बाद में गठन के समय महेश्वर, प्राणयोजन में शूलपाणि, आवाहन में पिनाकधृक्, स्नान में पशुपति, पूजन में शिव, विसर्जन में महादेव—इस क्रम से पूजन में नामोच्चारण करना चाहिये।।३२।।

अष्टमूर्त्तिं ततो देवि पूजयेत् साधकोत्तमः।
एतदन्यं न कर्त्तव्यं शक्तिदीक्षापरो यदि ॥३३॥

हे देवि! तदनन्तर साधकोत्तम को आठो मूर्त्तियों का पूजन करना चाहिये। साधक यदि शक्तिदीक्षा-परायण हो, तो उसे अन्य कुछ भी नहीं करना चाहिये।।३३।।

निषिद्धाचरणाद् देवि पापभाक् जायते नरः।
न्यूनाधिकं महादेवि यदि पूजादिकं चरेत् ॥३४॥
स गुरुश्चापि शिष्यश्च शिवहत्यां प्रयच्छति।
न्यूनाधिकं महेशानि यदि चैकाक्षरं भवेत् ॥३५॥
वर्णसंख्या महेशानि ब्रह्महत्या भविष्यति।
अतएव स पापिष्ठः सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ॥३६॥

हे देवि! निषिद्ध आचरण करने से पाप का भागी होना पड़ता है। हे महेश्वरि! यदि

कोई इसकी अपेक्षा न्यून अथवा अधिक पूजा का अनुष्ठान करता है, तो वह चाहे गुरु हो अथवा शिष्य, उसे शिवहत्या के समान पाप का भागी होना पड़ता है। हे महेश्वरि! पूजा के समय मन्त्रों में यदि एक भी अक्षर कम अथवा अधिक हो, तब उतने वर्ण की संख्या के समान ब्रह्महत्या का पाप लगता है। अत: ऐसा करने वाला पापी होता है, यह सत्य है।।३४-३६।।

एवं पूजां विधायादौ ततश्चान्यान् प्रपूजयेत्।
आदौ शिवं पूजयित्वा शक्तिपूजा ततः परम्॥३७॥

इस प्रकार से पूजन करने के उपरान्त अन्य देवों का पूजन करना चाहिये। प्रथमत: शिव की पूजा के अनन्तर शक्तिपूजा करनी चाहिये।।३७।।

यत्किञ्चिदुपचारं हि तस्य किञ्चिन्निवेदयेत्।
अन्यथा मूत्रवत् सर्वं गङ्गातोयं भवेद्यदि॥३८॥

जो कुछ भी उपचार हो, उसी का निवेदन करना चाहिये। निवेदन न किया गया उपचार यदि गंगाजल भी हो तो वह मूत्र के समान हो जाता है।।३८।।

अतएव महेशानि आदौ लिङ्गं प्रपूजयेत्।
शिवस्नानोदकं देवि मूर्ध्नि संधारयेद्यदि।
सत्यं सत्यं महेशानि शिवतुल्यो न संशयः॥३९॥

अतएव हे महेश्वरि! प्रथमत: शिवलिंग का पूजन करना चाहिये। हे महेशानि! यदि कोई शिव के स्नान से बचे जल को शिर पर धारण करता है, तो वह शिवके ही समान होता है; इसमें कोई संशय नही करना चाहिये। यह सर्वथा सत्य है।।३९।।

शिवरूपी स्वयं भूत्वा देवीपूजां समाचरेत्।
शैववैष्णवदौर्गार्कगाणपत्यैन्द्रदीक्षितः ॥४०॥
आदौ लिङ्गं पूजयित्वा यदि चान्यं प्रपूजयेत्।
तत्फलं कोटिगुणितं सत्यं सत्यं न संशयः॥४१॥

स्वयं शिवरूप होकर देवीपूजन का अनुष्ठान करना चाहिये। शिवमन्त्र, विष्णुमन्त्र, दुर्गामन्त्र, सूर्यमन्त्र, गणपतिमन्त्र तथा इन्द्रमन्त्र से दीक्षित व्यक्ति भी यदि प्रथमत: शिवलिंग का पूजन करके तब अन्य देवों का पूजन करता है (अपने-अपने मन्त्रदेवता का पूजन करता है) तो उसको पूजा का कोटिगुणित फल प्राप्त होता है; यह मूर्णत: सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये।।४०-४१।।

अन्यदेवं पूजयित्वा शिवं पश्चाद्यजेद्यदि।
तस्य पूजाफलं चैव भुज्यते यक्षराक्षसैः ॥४२॥

यदि प्रथमतः अन्य देवताओं का पूजन करने के उपरान्त शिवपूजन किया जाता है, तो उस पूजा का फलभोग यक्ष एवं राक्षसगण करते हैं।।४२।।

इति ते कथितं कान्ते तन्त्राणां सारमुत्तमम्।
बहु किं कथ्यते देवि भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥४३॥

इति तोड़लतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरगौरीसंवादे पञ्चमः पटलः

हे कान्ते! यहाँ तक तुमको तन्त्र का उत्तम सार मैंने बताया। अब और अधिक क्या कहें? हे देवि! तुम और क्या सुनना चाहती हो?।।४३।।

हर-गौरीसंवादात्मक सभी तन्त्रों में उत्तम तोडलतन्त्र के
पञ्चम पटल का अनुवाद समाप्त

षष्ठः पटलः

(कालिकामन्त्रवासना, महाविद्यापुरश्चरणम्, तारामन्त्रवासना)

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं महाकालिकाया मन्त्रं परमगोपनम्।
संक्षेपं कथितं नाथ! वासनां वद मां प्रति ॥१॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे नाथ! संक्षेप में आपके द्वारा कहे गये महाकालिका के अत्यन्त गुप्त मन्त्र को मैंने सुना। अब आप उयकी वासना को मुझसे कहिये।।१।।

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि महामन्त्रवासनां सर्वसिद्धिदाम्।
यस्याः श्रवणमात्रेण मन्त्राः सिद्धा भवन्ति हि ॥२॥

श्रीशिव कहते हैं—हे देवि! सर्वसिद्धिप्रद महामन्त्र की वासना को सुनो, जिसके सुनने मात्र से ही समस्त मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं।।२।।

ककारस्योर्ध्वकोणेषु प्राणो वायुः प्रतिष्ठितः।
अपानो वायुकोणे च समानो मध्यदेशतः ॥३॥
उदानोऽङ्कुशकोणे च मात्रायां व्यान एव च।
बीजन्तु कालिकारूपं प्रकारं शृणु पार्वति ॥४॥

ककार के ऊर्ध्व कोण पर प्राणवायु प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार ककार के वायुकोण पर अपान वायु, मध्यदेश में समान वायु, अंकुश कोण में उदान वायु तथा मात्रा में व्यान वायु प्रतिष्ठित है। हे पार्वति! बीज कालिकास्वरूप हैं। अब मन्त्रवासना का प्रकार सुनो।।३-४।।

कलाभागे जटाजूटं केशञ्च परमेश्वरि।
विन्दुमस्तकभालन्तु नासा नेत्रञ्च पार्वति ॥५॥

हे परमेश्वरि! कलाभाग में जटाजूट तथा केश प्रतिष्ठित है। हे पार्वति! बिन्दु मस्तक है तथा ललाट नासा एवं नेत्रस्वरूप भी है।।५।।

श्रोत्रयुग्मं तथा वक्त्रं स्कन्दनादव्यवस्थितम्।
चतुर्बाहुं तथा देहं स्तनद्वन्द्वं कटिद्वयम्॥६॥
हृदयं जठरं पादं तथा सर्वाङ्गुलिः शिवे।
ब्रह्मरूपं ककारञ्च सर्वाङ्गं तनुसंशयः॥७॥

हे शिवे! कर्णयुगल, मुख स्कन्दरूप नाद में जैसे व्यवस्थित है, वैसे ही चतुर्बाहु, देह, स्तनयुगल, कटिद्वय, हृदय, जठर, पाद तथा सभी अंगुलियाँ इसी बीज में स्थित हैं। ककार परिपूर्ण ब्रह्मरूप है। इसमें कोई संशय नहीं है।।६-७।।

शकारं कामरूपञ्च योनिरूपं न चान्यथा।
चन्द्रसूर्याग्निरूपञ्च रेफं परमदुर्लभम्॥८॥

शकार योनिस्वरूप तथा कामरूप है। यह अन्य प्रकार का कदापि नहीं है। परमदुर्लभ रेफ ही चन्द्र-सूर्य-अग्निस्वरूप है।।८।।

सर्वाङ्गद्योतनं तेजो जगदानन्दरूपकम्।
बिन्दुनिर्वाणदं नादं महामोक्षप्रदं सदा॥९॥

सर्वांग-प्रकाशक तेज जगत् का आनन्दरूप है। विन्दु निर्वाण-प्रदायक है एवं नाद सर्वदा महामोक्ष देने वाला है।।९।।

सर्वविघ्नहरं देवि ककारं तोयरूपकम्।
सर्वपापहरं रेफं तस्माद्वह्निर्न चान्यथा॥१०॥

हे देवि! जलरूप ककार समस्त विघ्नों का नाशक है। रेफ से समस्त पापों का नाश होता है। अत: वह अग्निरूप है; अन्य रूप नहीं है।।१०।।

ईकारं परमेशानि शक्तिं चाव्ययरूपिणीम्।
महामोक्षप्रदा देवि तस्मान्माया प्रकीर्त्तिता॥११॥

हे परमेश्वरि! ईकार अव्यय एवं शक्तिस्वरूप है। हे देवि! यह महान् मोक्ष को देने वाला है; इसीलिये इसे माया कहा गया है।।११।।

ककारं ब्रह्मरूपञ्च मकारं विष्णुरूपकम्।
रेफः संहाररूपत्वाच्छिवरूपो न चान्यथा॥१२॥

ककार ब्रह्मरूप, मकार विष्णुरूप एवं रेफ संहाररूप होने से शिवरूप है। इनका अन्य कोई रूप नहीं है।।१२।।

ब्रह्मविष्णुशिवः साक्षात् ककारं परमेश्वरि।
अनुच्चार्यं तदेव स्याद्विना मायायुतं शिवे॥१३॥

हे परमेश्वरि! ककार साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवरूप है। हे शिवे! वह माया (ईकार) से युक्त नहीं है, अत: उसका मायायुक्त उच्चारण नहीं होता।।१३।।

मायायुक्तं यदा देवि तदा मुक्तिप्रदं महत्।
अतएव महेशानि मायाशक्तिर्निगद्यते ॥१४॥

हे देवि! जब यह ककार मायायुक्त हो जाता है, तब महामुक्तिप्रद हो जाता है; इसीलिये हे महेश्वरि! माया को शक्ति कहा जाता है।।१४।।

ककारं धर्मदं देवि ईकारञ्चार्थदायकम्।
रकारं कामदं कान्ते मकारं मोक्षदायकम् ॥१५॥

हे देवि! ककार धर्मप्रद है, ईकार अर्थदायक है, रकार कामप्रदायक है तथा मकार को मोक्षदायक कहा गया है।।१५।।

एकत्रोच्चारणाद् देवि निर्वाणमोक्षदायिनी।
माहात्म्यं देवदेवेशि किं वक्तुं शक्यते मया ॥१६॥

हे देवि! एक साथ उच्चारण करने से यह निर्वाणरूप मोक्ष प्रदान करता है। हे देवेशि! मैं इनका माहात्म्य कहने में समर्थ नहीं हूँ।।१६।।

जीवकोटिसहस्रेण वक्त्रकोटिशतेन च।
जन्मान्तरसहस्रेण वर्णितुं नैव शक्यते ॥१७॥

सहस्र कोटि जीवों द्वारा, करोड़ों मुख द्वारा एक सहस्र जन्म में भी इसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।।१७।।

विधिवल्लक्षजापेन पुरश्चरणमुच्यते।
एतद्रूपं महामायां कूर्चबीजन्तु सुन्दरि ॥१८॥

विधानपूर्वक एक लाख जप इसका पुरश्चरण कहा गया है। हे सुन्दरि! कूर्चबीज (हुं) को महामाया जानना चाहिये।।१८।।

वाग्भवं प्रणवं देवि एतद्रूपं न संशयः।
अग्निजाया महाविद्या एतद्रूपं न संशयः ॥१९॥

हे देवि! निसंशय रूप से वाग्भव (ऐं) तथा प्रणव महामायास्वरूप हैं। महाविद्या अग्निजाया (स्वाहा) भी महामाया का ही स्वरूप है; इसमें कोई संशय नहीं है।।१९।।

द्रुतसिद्धिप्रदा विद्या वह्निजाया परा मनुः।
सम्बोधनपदेनैव सदा सन्निधिकारिणी ॥२०॥

वह्निजाया (स्वाहा) शीघ्र सिद्धि देने वाली है; अतः यह श्रेष्ठ मन्त्र है। यह सम्बोधन पद द्वारा सदा सान्निध्य देने वाली होती है।।२०।।

अथ वक्ष्ये महाविद्यापुरश्चरणमुत्तमम्।
कथितं मन्त्रराजस्य त्रिपुरश्चरणं शृणु ॥२१॥

अब इस महाविद्या का उत्तम पुरश्चरण कहा जा रहा है। इस मन्त्रराज का त्रिपुरश्चरण कहता हूँ; सुनो।।२१।।

दिवा लक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः।
दिव्यवीरमते देवि रात्रौ लक्षं जपेत् सुधीः ॥२२॥

इस महाविद्या का साधक को जितेन्द्रिय होकर हविष्यान्न भक्षण करते हुये दिन में एक लाख जप करना चाहिये और रात्रि में दिव्यभाव अथवा वीरभाव से सुधी साधक को एक लाख जप करना चाहिये।।२२।।

अथ षडक्षरस्यास्य शृणु देवि पुरस्क्रियाम्।
दिव्य वीरमतेनैव विंशत्येकेन पार्वति ॥२३॥

हे देवि! अब इस षडक्षर मन्त्र का अन्य रूप से पुरश्चरण सुनो। हे पार्वति! दिव्य तथा वीरमत से इक्कीस मन्त्रजप द्वारा इसका पुरश्चरण होता है।।२३।।

तथा च त्र्यक्षरं मन्त्रं प्रजपेत् साधकाग्रणीः।
ध्यानपूजादिकं सर्वं समानं वीरवन्दिते ॥२४॥

साधकश्रेष्ठ को इस प्रकार त्र्यक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये। हे वीरवन्दिते! इस मन्त्र का पूजा, ध्यान आदि समस्त विधान पूर्व के समान ही है।।२४।।

एतस्याः सदृशी विद्या फलदा नास्ति योगिनि।
सर्वमन्त्रस्य चैतन्यं शृणु पार्वति सादरम् ॥२५॥

हे योगिनि! इसके समान फलदायक कोई दूसरी विद्या नहीं है। हे पार्वति! अब समस्त मन्त्रों के चैतन्य को आदर के साथ सुनो।।२५।।

सहस्रारे महापद्मे बिन्दुरूपं परं शिवम्।
कुण्डलिनीं समुत्थाप्य हंसेन मनुना सुधीः ॥२६॥

साधक को हंसमन्त्र द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत् करके महापद्म सहस्रार में बिन्दुरूप परमशिव का चिन्तन करना चाहिये।।२६।।

नासाग्रे या स्थिरा दृष्टिर्जायते परमेश्वरि।
तदैव मन्त्रचैतन्यं कुण्डलीचक्रगं भवेत् ॥२७॥

हे परमेश्वरि! जब नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर हो जाती है, तभी कुण्डली चक्रगत मन्त्र चैतन्य होता है।।२७।।

सहस्रारे महापद्मे कुण्डल्या सहितं गुरुम्।
भावयेत् सर्वमन्त्राणां चैतन्यं जायते प्रिये॥२८॥
तदेव प्रजपेन्मन्त्रं सिद्धिदं नात्र संशयः॥२९॥

हे प्रिये! जब सहस्रार महापद्म में कुण्डलिनी के साथ गुरु की भावना होती है, तभी मन्त्रचैतन्य का आविर्भाव हो जाता है। हे प्रिये! इस चैतन्यता प्राप्त मन्त्र का जप करने से सिद्धि मिलती है, इसमें कोई संशय नहीं है।।२८-२९।।

श्रीदेव्युवाच

इदानीं तारिणीमन्त्रवासनां वद शङ्कर।
कालिका मोक्षदा नित्या तारिणी भववारिधौ॥३०॥

श्री देवी कहती हैं—हे शंकर! अब तारामन्त्र की वासना कहिये। ये संसारसागर से त्राण दिलाने वाली तथा सर्वदा मोक्ष प्रदान करने वाली हैं।।३०।।

श्रीशिव उवाच

कला केशं महेशानि बिन्दु मस्तकमीरितम्।
नादञ्च वक्त्रं भालञ्च नासां नेत्रञ्च पार्वति॥३१॥

श्री शिव कहते हैं—हे महेश्वरि! कला केशरूप है तथा बिन्दु को मस्तकरूप कहा गया है। हे पार्वति! नाद है मुख, ललाट, नासिका तथा नेत्रस्वरूप।।३१।।

भुजचतुष्टयं देहं स्तनद्वन्द्वं च वक्षसम्।
मकारेण तु देवेशि पृष्ठं चैव कटिद्वयम्॥३२॥

हे देवेशि! मकार में चार बाहु, देह, स्तनद्वय, वक्ष, पृष्ठ तथा कटिद्वय प्रतिष्ठित है।।३२।।

तकारेण योनिदेशं गुदं पादद्वयं तथा।
सर्वाङ्गुलिनखञ्चैव भावयेत् साधकोत्तमः॥३३॥

साधकश्रेष्ठ को तकार में योनिदेश, गुह्य, पादद्वय, समस्त अंगुलियों एवं नख को प्रतिष्ठित मानकर भावना करनी चाहिये।।३३।।

चन्द्रसूर्यात्मकं रेफं वह्निबीजं न चान्यथा।
सर्वा नाड्यस्तथा ज्योती रोमञ्च भूषणादिकम्॥३४॥

शकारञ्च महामाया शक्तिरूपप्रकाशिनी।
मूर्धादिपादपर्यन्तं शक्तिबीजं सुदुर्लभम्॥३५॥

वह्निबीज रेफ ही चन्द्र एवं सूर्यरूप है; अन्यरूप नहीं है। शकार है समस्त नाड़ी। समस्त ज्योति है रोम एवं भूषणादिरूप। महामाया शक्ति है तथा रूप का प्रकाश करने वाली है। शक्तिबीज मस्तक से पैर-पर्यन्त प्रतिष्ठित है। यह शक्ति अतीव दुर्लभ है।।३४-३५।।

अस्य मन्त्रस्य माहात्म्यं किं मया कथ्यतेऽधुना।
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
काश्यादितीर्थं देवेशि सार्द्धकोटिभुवात्मकम्॥३६॥

क्या मैं इस मन्त्र के माहात्म्य को कह सकूँगा? (अर्थात् नहीं कह सकूँगा)। सहस्र अश्वमेध तथा एक सौ वाजपेय यज्ञ भी इसके बराबर नहीं हैं। हे देवेशि! साढ़े तीन करोड़ काशी आदि तीर्थ भी इसके समान नहीं है।।३६।।

पूर्णां शस्येन देवेशि सप्तद्वीपां वसुन्धराम्।
मेरुतुल्यसुवर्णन्तु ब्राह्मणे वेदपारगे॥३७॥
सदक्षिणं व्रतं सर्वं चतुर्वेदसुविस्तरम्।
गाञ्चैव भूमिसंस्थञ्च हस्त्यश्वञ्च तथैव च॥३८॥
बलिदानं महेशानि पितृयज्ञं तथैव च।
विहितञ्च महापुण्यं यदुक्तं शास्त्रवेदिभिः।
सकृज्जपान्महेशानि कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥३९॥

हे देवेशि! पूर्ण शस्य के साथ सातो द्वीपों के साथ पृथ्वी तथा मेरुतुल्य सुवर्ण का वेदज्ञ ब्राह्मण को दान करने से, चतुर्वेद-विस्तारित सदक्षिणा समस्त व्रतों का अनुष्ठान करने से, गो-भूमि-गृह-हस्ती तथा अश्वदान करने से, बलि तथा पितृयज्ञ करने से जिसे महापुण्य का शास्त्रज्ञों ने विवेचन किया है, वह समस्त पुण्य इस महामन्त्र के एक जप के १६वें हिस्से के बराबर भी नहीं है।।३७-३९।।

एकोच्चारणाद्देवेशि किं पुनर्ब्रह्म केवलम्।
सृष्टिस्थितिलयादीनां कर्त्तारो नात्र संशयः॥४०॥
सगुणं निर्गुणं साक्षात् निराकारञ्च मूर्त्तिमत्।
वैखरीयं महाविद्या वर्णाश्रिता सुनिश्चला॥४१॥

हे देवेशि! इसका एक बार उच्चारण करने-मात्र से ही वह दूसरे ब्रह्मा के समान

हो जाता है। वह सृष्टि-स्थिति-लय का कर्त्ता हो जाता है। वह ब्रह्म सगुण होकर भी साक्षात् निर्गुण है, निर्गुणस्वरूप है। मूर्तिमान होकर भी मूर्त्तिरहित हैं। यह वैखरी महाविद्या वर्णमयी होकर सुनिश्चल रहती है।।४०-४१।।

यतो निरक्षरं वस्तु अतस्तारा प्रकीर्त्तिता।
ब्रह्मविद्यास्वरूपेयं भोगमोक्षफलप्रदा ।।४२।।

वे निरक्षर (क्षरण-रहित, विनाश-रहित) हैं; इसीलिये उन्हें तारा कहा गया है। ये ब्रह्मविद्या हैं तथा भोग-मोक्ष को देने वाली हैं।।४२।।

जन्मकोटिसहस्रेण वर्णितुं नैव शक्यते।
पञ्चवक्त्रेण देवेशि किं मया कथ्यतेऽधुना ।।४३।।

हे देवेशि! एक करोड़ जन्मों में भी इसका वर्णन नहीं किया जा सकता; फिर इन पाँच मुखों द्वारा मैं कितना कह सकता हूँ।।४३।।

एकाक्षरी महाविद्या त्रिषु लोकेषु पूजिता।
एकाक्षरविहीनो यो मन्त्रं गृह्णाति पार्वति।
कल्पकोटिसहस्रेण तस्य सिद्धिर्न जायते ।।४४।।

एकाक्षरी महाविद्या तीनों लोकों में पूजित है। हे पार्वति! जो एकाक्षररहित मन्त्र का ग्रहण करता है, उसे सहस्र कोटि कल्पों में भी सिद्धि नहीं प्राप्त होती।।४४।।

सकारो विष्णुरूपश्च तकारश्च प्रजापतिः।
रेफः संहाररूपत्वाच्छिवः साक्षान्न संशयः ।।४५।।

'स' विष्णुरूप है, 'त' प्रजापतिरूप है एवं रेफ संहाररूप साक्षात् शिव है। इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।।४५।।

या चाद्या परमा विद्या सा माया परमा कला।
निराकारं परं ज्योतिर्बिन्दुं चाव्ययसंज्ञकम् ।।४६।।

जो आद्या परमा विद्या हैं, वे ही परमा कला माया हैं। अव्ययसंज्ञक विन्दु ही है निराकार परब्रह्म।।४६।।

बिन्दुशब्देन शून्यं स्यात्तथा च गुणसूचकम्।
बिन्दुचक्रामृता देवि प्लवन्ती चार्द्धमात्रया ।।४७।।

हे देवि! बिन्दु शब्द से शून्य द्योतित होता है अर्थात् बिन्दु शून्यस्वरूप है; यह गुण का सूचक है। अर्द्धमात्रा से विन्दुचक्र से अमृत प्रसरित होता है।।४७।।

अर्द्धमात्राकृतिर्नादो व्यापको विश्वपालकः।
यथेयं वैखरी विद्या कूर्चविद्या तथैव च।।४८।।

अर्द्धमात्राकृति नाद व्यापक है तथा विश्व का पालक है। जिस प्रकार की यह वैखरी विद्या है, वैसी ही कूर्च विद्या भी है।।४८।।

माहात्म्यं चैव पूजायां भेदो नास्ति सुरेश्वरि।
सतारञ्च तथा बिन्दुं माया पञ्चाक्षरी परा।।४९।।

हे सुरेश्वरि! इनकी पूजा तथा माहात्म्य में कोई भेद नहीं है। प्रणव के साथ विन्दु को भी उसी प्रकार से समझना चाहिये। परा माया पञ्चाक्षरी हैं।।४९।।

विभक्ते चाक्षरे चैव क्रियते मूर्त्तिकल्पना।
सार्द्धपञ्चाक्षरी विद्या तारिणी मूर्त्तिमत् स्वयम्।।५०।।

विभक्त वर्ण में मूर्त्ति की कल्पना करनी पड़ती है। सार्द्ध पंचाक्षरी विद्या साक्षात् मूर्त्तिमान् तारिणीस्वरूप है।।५०।।

तद्रूपं पञ्चरूपं हि वाग्भवञ्च हरिप्रियाम्।
प्रणवं कामबीजन्तु गगनञ्च शिवं शिवे।।५१।।

हे शिवे! यह मूर्त्तिमत् तारिणी ही है पञ्चरूप (अनुस्वाररूप)। वागभव (ऐं) हरिप्रियारूप है। प्रणव है—कामबीजरूप तथा गगन (हकार) है—शिवस्वरूप।।५१।।

तन्त्रबीजं तदेव स्याद्वह्निजायां सुरेश्वरि।
सम्बोधनपदेनैव सदा सन्निधिकारिणी।।५२।।

हे सुरेश्वरि! अस्त्रबीज (फट्) तथा वह्निजाया (स्वाहा)—ये दोनों मूर्तिमान् तारिणी-स्वरूप हैं। सम्बोधन पद से सर्वदा सान्निध्यलाभ होता है।।५२।।

पञ्चाक्षरेण देवेशि तारिणी कामरूपिणी।
तथा पञ्चाक्षरं पश्य ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।।५३।।

हे देवेशि! कामरूपिणी तारिणी पञ्चाक्षर से सन्निहित होकर रहती है। पञ्चाक्षर को इस प्रकार ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप से देखना चाहिये।।५३।।

शक्तिरूपं निराकारं तथा पञ्चाक्षरेण तु।
यथा पञ्चाक्षरी विद्या तथा विद्या षडक्षरी।।५४।।

इस प्रकार पञ्चाक्षर मन्त्र में निराकार शक्ति सन्निहित रहती है। जैसी पञ्चाक्षरी विद्या है, वैसी ही षडक्षरी भी है।।५४।।

तथैव षोडशी विद्या तथा विद्या च त्र्यक्षरी।
तथैवाष्टाक्षरी विद्या तथा नवाक्षरी परा।
माहात्म्यं ध्यानपूजायां भेदो नास्ति सुरेश्वरि ॥५५॥

पञ्चाक्षरी तथा षडक्षरी के समान ही षोडशी, त्र्यक्षरी, अष्टाक्षरी एवं परा नवाक्षरी भी है। हे सुरेश्वरि! इनके माहात्म्य तथा ध्यान-पूजादि में भी कोई भेद नहीं है।।५५।।

अतिस्नेहेन देवेशि किं मया न प्रकाशितम्।
प्राणान्तेऽपि पशोरग्रे वैखरीं न प्रकाशयेत् ॥५६॥

इति तोड़लतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरगौरीसंवादे षष्ठः पटलः

हे देवेशि! अत्यन्त स्नेह के कारण मैंने क्या नहीं प्रकाशित किया है अर्थात् अप्रकाश्य विषयों को भी प्रकाशित कर दिया है। प्राणान्त का भय उपस्थित होने पर भी इसे वैखरी रूप में पशु के सामने प्रकाशित नहीं करना चाहिये।।५६।।

हर-गौरीसंवादात्मक सभी तन्त्रों में उत्तम तोड़लतन्त्र के
षष्ठ पटल का अनुवाद समाप्त

सप्तमः पटलः

(देहयोगकथनम्, देहे सप्तद्वीपादिकथनम्, ब्रह्माण्ड-परिमाणम्, पृथिवीपरिमाणम्, सप्तसागर-परिमाणम्, देहे पीठवर्णनम्)

श्रीदेव्युवाच

महायोगमयी देवी खेचरी परमा कला।
योगज्ञानं विना सिद्धिर्नास्ति सत्यं सुरेश्वर॥१॥

श्रीदेवी कहती हैं—परमा कला खेचरी देवी महायोगमयी हैं। हे सुरेश्वर! योगज्ञान के अभाव में किसी को भी सिद्धि नहीं मिलती, यह सत्य है।।१।।

ब्रूहि मे देवदेवेश क्षुद्रब्रह्माण्डमध्यतः।
किमाधारे स्थिता नाथ सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥२॥

हे देवदेवेश! क्षुद्र ब्रह्माण्ड में सात द्वीपों वाली पृथ्वी किसी आधार पर अवस्थित हैं, इसे कृपा करके कहें।।२।।

समुद्रसप्तकं नाथ किमाधारं प्रतिस्थिरम्।
मूलाधारे महीचक्रे संस्थिता मानवादयः॥३॥
क्षुद्ररूपा जनाः सर्वे किमाकारेण संस्थिताः।
स्वकीयाङ्गुलिमानेन मारुतं कथय प्रभो॥४॥

हे नाथ! सातो समुद्र किस आधार पर स्थित हैं? क्षुद्ररूप मानव-प्रभृति जीवलोक किस आधार पर पृथ्वी पर अवस्थित है? हे प्रभो! अपने अंगुलिमान द्वारा मारुत का वर्णन कीजिये।।३-४।।

श्रीशिव उवाच

मूलाधारे स्थिता देवि सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
वलयाकाररूपेण समुद्राः सप्त संस्थिताः॥५॥

श्री शिव कहते हैं—हे देवि! सप्तद्वीपा वसुन्धरा मूलाधार पर अवस्थित है। उसके बाहर सातो समुद्र उसके वलयाकार रूप से स्थित हैं।।५।।

जम्बूद्वीपं मध्यदेशे तद्वाह्ये लवणाम्बुधिः ।
शाकद्वीपं महेशानि तद्वाह्ये दधिसागरः ॥६॥

हे महेशानि! पृथ्वी के मध्य देश में जम्बूद्वीप है, उसके बाहर लवणसमुद्र है, उसके बाहरी भाग में शाकद्वीप है और उसके बाहर दधिसागर है।।६।।

तद्वाह्ये शाल्मलिद्वीपं सागरो दुग्धतद्वहिः ।
तद्वाह्ये पाटलाद्वीपं तद्वाह्ये तु जलान्तकम् ॥७॥

उस दधिसागर के बाहर शाल्मली द्वीप है, उसके बाहर दुग्धसागर है, उसके बाहर पाटलद्वीप है और उसके बाहर जलान्तक (समुद्र) स्थित है।।७।।

पृथिव्यां वर्त्तते देवि यद्रूपा मानवादयः ।
तेन रूपेण देवेशि! मूलाधारे तु जन्तवः ॥८॥
यन्नवत्यङ्गुलं देवि मारुतं परिकीर्त्तितम् ।
मार्त्तण्डस्थितिमानन्तु अधिकं परिकीर्त्तितम् ॥९॥

हे देवि! जिस प्रकार पृथ्वी पर मनुष्य-प्रभृति रहते हैं, उसी प्रकार मूलाधार में जन्तुगण निवास करते हैं। हे देवि! वायु को छियानबे अंगुल परिमित कहा गया है एवं सूर्य का स्थितिमान वायु के मान से अधिक कहा गया है।।८-९।।

श्रीदेव्युवाच

कियद् भुवन्तु ब्रह्माण्डं वद भूतलवासिनः ।
अङ्गुल्येकेन किं मानं कथयस्व दयानिधे ॥१०॥

श्रीदेवी कहती हैं—भूतलवासी जीवगण का भूलोकरूप ब्रह्माण्ड कितने परिमाण वाला है, इसे कहिये। हे दयानिधे! एक अंगुल द्वारा क्या परिमाण ज्ञात होता है, इसे भी स्पष्ट कीजिये।।१०।।

श्रीशिव उवाच

अङ्गुल्येकेन देवेशि सहस्राब्दं प्रजायते ।
षण्णवतिसहस्राब्दं भवेद् भूतलवासिनः ॥११॥

श्री शिव कहते हैं—हे देवेशि! एक अंगुल परिमाण का तात्पर्य एक हजार वर्ष होता है। भूतलवासियों का परिमाण छियानबे हजार (९६०००) वर्ष होता है।।११।।

पादाङ्गुष्ठादिगुल्फान्तं प्रिये रन्ध्रसहस्रकम् ।
रन्ध्रं चन्द्रसहस्राब्दं गुल्फादिजानुसन्धिषु ॥१२॥

हे प्रिये! पैरों की अंगुली से लेकर गुल्फ-पर्यन्त एक हजार छिद्र होते हैं एवं गुल्फ से जानु-पर्यन्त चान्द्र सहस्र वर्ष अर्थात् पन्द्रह हजार छिद्र होते हैं।।१२।।

जान्वादिगुदपर्यन्तं मानं विंशसहस्रकम्।
मूलाधारादिलिङ्गान्तं चतुर्वर्षसहस्रकम्॥१३॥

जानु से गुह्यप्रदेश तक बीस हजार छिद्र होते हैं एवं मूलाधार से लिंग-पर्यन्त चार हजार वर्ष-परिमित छिद्र होते हैं।।१३।।

लिङ्गादिनाभिपर्यन्तं भवेदृषिसहस्रकम्।
नाभ्यादिहृदयान्तञ्च ग्रहसंख्यसहस्रकम्॥१४॥

लिंग से नाभि-पर्यन्त ऋषि (सात) हजार छिद्र होते हैं एवं नाभि से हृदय-पर्यन्त ग्रह अर्थात् नव हजार छिद्र होते हैं।।१४।।

हृदादिकण्ठपर्यन्तमृषिसंख्यसहस्रकम्।
विशुद्धादिकमाज्ञान्तं मानं रुद्रसहस्रकम्॥१५॥

हृदय से कण्ठ-पर्यन्त ऋषि (सात) हजार छिद्र होते हैं एवं विशुद्धचक्र से आज्ञाचक्र-पर्यन्त रुद्र (ग्यारह) हजार छिद्र होते हैं।।१५।।

आज्ञाचक्राच्छिवान्तं वै दिक्सहस्रं सुरेश्वरि।
सूर्यसंख्यासहस्रं तु समीरश्चाधिकः स्मृतः॥१६॥

हे सुरेश्वरि! आज्ञाचक्र से सहस्रार (शिव) पर्यन्त दिक् अर्थात् दश हजार छिद्र होते हैं। वायु में सूर्यसंख्या सहस्र अर्थात् बारह हजार अधिक छिद्र कहा गया है।।१६।।

शरीरसहकारेण ह्रासवृद्धी प्रजायते।
षड्गुणो रतिकाले च त्रिगुणो भोजनाद्वहिः॥१७॥

शरीर की सहायता से इनकी ह्रास-वृद्धि होती रहती है। रतिकाल में छः गुणा वृद्धि होती है एवं भोजनकाल में तीन गुणा वृद्धि होती है।।१७।।

धमने चाष्टधा प्रोक्ता समीरो वृद्धितां गतः।
सद्गुरोरुपदेशेन मन्त्रमार्गेण पार्वति।
यदि चैकाङ्गुलं ह्रस्वं सहस्राब्दं स जीवति॥१८॥

धमन करने से आठगुणा वायुवृद्धि होती है। हे पार्वति! सद्गुरु के उपदेश की सहायता से यदि एक अंगुल भी यह कम हो जाय, तो व्यक्ति एक हजार वर्ष तक जीवित रहता है।।१८।।

एवं क्रमेण देवेशि समता यदि वा भवेत्।
जित्वा मृत्युं महेशानि शम्भुवद्विहरेत् क्षितौ ॥१९॥

हे देवेशि! यदि इस क्रम से वायु में समता का उदय हो जाय तब हे महेश्वरि! साधक शम्भु के समान मृत्युञ्जयी होकर पृथ्वी पर विचरण करता है।।१९।।

अतएव महेशानि योनिमुद्रा मयोदिता।
प्राणायामेन देवेशि तथैव योनिमुद्रया ॥२०॥
तथैवाभ्यासयोगेन यदि वायुः समो भवेत्।
जित्वा मृत्युं महेशानि खेचरो जायतेऽचिरात् ॥२१॥

हे महेश्वरि! इसी कारण मैंने तुमसे योनिमुद्रा कही थी। हे देवेशि! प्राणायाम से, योनिमुद्रा से, अभ्यासयोग से वायु यदि समान हो जाय, तब साधक मृत्यु को जीत कर शीघ्र ही आकशचारी हो जाता है।।२०-२१।।

प्रमाणं कथितं सर्वं मनुष्यस्य प्रियंवदे।
श्वासोच्छ्वासविकासेन कुण्डली गगनं चरेत् ॥२२॥

हे प्रियंवदे! इस प्रकार मनुष्य के समस्त परिणाम को कहा गया। श्वास तथा उच्छ्वास के विकास से कुण्डली गगन में (ऊर्ध्व में) अर्थात् सहस्रार में जाती है।

श्रीदेव्युवाच

इदानीं पृथिवीमानं वद मे परमेश्वर।
सप्तस्वर्गस्थितो यो-यो या या शक्तिः स्थिता सदा।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥२३॥

श्रीगौरी कहती हैं—हे परमेश्वर! अब मुझे पृथ्वी का परिमाण बताइये। सात स्वर्गों में जो-जो देवता है एवं जो-जो शक्तियाँ स्थित हैं, उन्हें भी यदि मेरे ऊपर आपका स्नेह है, तो बताने की कृपा करें; मैं सुनना चाहती हूँ।।२३।।

श्रीशिव उवाच

मूलाधारे महीचक्रे संस्थिता मानवादयः।
तेषां मानेन देवेशि चार्द्धं चैव द्विसप्ततिः ॥२४॥

श्रीशिव कहते हैं—मूलाधार के महीचक्र में मानव, देवता तथा शक्तियाँ अवस्थित हैं। उसका परिमाण है—साढ़े बहत्तर हजार।।२४।।

द्विगुणः परमेशानि तद्बाह्ये लवणाम्बुधिः।
एवं क्रमेण देवेशि द्विगुणं परिकीर्त्तितम् ॥२५॥

हे देवेशि! मूलाधार के बाहर उसका दूना लवणसमुद्र है। इसी क्रम से सभी एक दूसरे से दूने होते जाते हैं।।२५।।

डाकिनीसहितो ब्रह्मा मूलाधारे तु सुन्दरि ।
राकिणीसहितो विष्णुः स्वाधिष्ठाने व्यवस्थितः ।।२६।।

हे सुन्दरि! मूलाधार में ब्रह्मा डाकिनी शक्ति के साथ तथा स्वाधिष्ठान में विष्णु राकिणी शक्ति के साथ अवस्थित हैं।।२६।।

लाकिनीसहितो रुद्रो मणिपूरे सुरेश्वरि ।
अनाहते महापद्मे काकिनीसहितो हरः ।।२७।।

हे सुरेश्वरि! लाकिनी शक्ति के साथ रुद्र मणिपूर में तथा अनाहत महापद्म में काकिनी शक्ति के साथ हर विद्यमान हैं।।२७।।

विशुद्धाख्ये वसेन्नित्या साकिनी च सदाशिवः ।
हाकिनी परशिवो देवश्चाज्ञाचक्रे सुरेश्वरि ।।२८।।

हे सुोश्वरि! विशुद्धचक्र में साकिनी शक्ति एवं सदाशिव विराजित है तथा आज्ञाचक्र में हाकिनी एवं परमशिव विद्यमान रहते हैं।।२८।।

सहस्रारे महापद्मे विश्वरूपः परः शिवः ।
महाकुण्डलिनी तत्र स्थिता नित्या सुरेश्वरि ।।२९।।

हे सुरेश्वरि! सहस्रार महापद्म में विश्वरूप परशिव विद्यमान रहते है एवं यहीं पर सदा महाकुण्डलिनी भी विराजमान रहती है।।२९।।

विशेष—छत्तीस तत्त्ववादी तन्त्रमतानुसार परमशिव तथा परशिव भिन्न-भिन्न हैं। इनके अनुसार आज्ञाचक्र परशिव तथा सहस्रार परमशिव का स्थान है।

श्रीदेव्युवाच

कुत्र मूले महापीठे वर्त्तते परमेश्वर ।
मूलाधारादधोभागे पातालं कीदृशं प्रभो ।।३०।।

श्रीदेवी कहती हैं—हे प्रभो! किस महापीठ के मूल में परमेश्वर वर्त्तमान रहते हैं? मूलाधार के अधोभाग में पाताल किस प्रकार का है, इसे कृपया कहिये।।३०।।

श्रीशिव उवाच

मूलाधारे कामरूपं हृदि जालन्धरं प्रिये ।
पूर्णगिरिमधोभागे उड्डीयानं तदूर्ध्वके ।।३१।।

श्रीशिव कहते हैं—हे प्रिये! मूलाधार में कामरूप पीठ, हृदय में जालन्धर पीठ, उसके अधोभाग में पूर्णगिरि पीठ तथा ऊर्ध्व भाग में उड्डीयान पीठ अवस्थित है।।३१।।

वाराणसी भ्रुवोर्मध्ये ज्वलन्ती लोचनत्रये।
मायावती मुखवृत्ते कण्ठे चाष्टपुरी तथा ॥३२॥

दोनों भौंहों के मध्य में वाराणसी पीठ, नयनत्रय में ज्वलन्ती पीठ (लगता है कि उसे ही ज्वालादेवी कहते हैं), मुखवृत्त में मायावती पीठ तथा कण्ठ में अष्टपुरी पीठ विद्यमान रहता है।।३२।।

नाभिमूले महेशानि अयोध्यापुरी संस्थिता।
काञ्चीपीठं कटीदेशे श्रीहट्टं पृष्ठदेशके ॥३३॥

हे महेशानि! नाभिमूल में अयोध्यापुरी, कटिदेश में काञ्चीपीठ तथा पृष्ठ में श्रीहट्टपीठ अवस्थित है।।३३।।

मूलाधारात् शतं चैव अतलं परिकीर्त्तितम्।
सुतलञ्च वर्षशतं तलातलशतं प्रिये ॥३४॥

हे प्रिये! मूलाधार से एक सौ अंगुल दूर अतल, इससे एक सौ वर्ष परिमाण की दूरी पर सुतल तथा शतांगुलि दूर तलातल अवस्थित है।।३४।।

ऋषिबाणेन्दुवर्षान्तं संस्थितञ्च महा:तलम्।
शतद्वयान्तं पातालं द्विशतं वै रसातलम् ॥३५॥

एक सौ सत्तावन अंगुलि दूर है—महातल, दो सौ अंगुल दूर है—पाताल एवं और दो सौ अंगुल दूर है—रसातल।।३५।।

मूलाधाराच्च देवेशि द्वेऽङ्गुली चान्तिके स्थिते।
तयोर्मध्ये च पातालास्तिष्ठन्ति परमेश्वरि ॥३६॥

हे देवि! मूलाधार से दो अंगुलि के मध्य में पातालसमूह अवस्थित हैं।।३६।।

इति ते कथितं कान्ते योगसारं समासतः।
न वक्तव्यं पशोरग्रे प्राणान्तेऽपि कदाचन ॥३७॥

इति तोडलतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरगौरीसंवादे सप्तमः पटलः

हे कान्ते! इस प्रकार संक्षेप में योगसार को तुमसे कहा। प्राणसंकट उपस्थित होने पर भी इसे पशुवर्ग के मनुष्य के समक्ष कदापि प्रकाशित नहीं करना चाहिये।।३७।।

हर-गौरीसंवादात्मक सभी तन्त्रों में उत्तम तोडलतन्त्र के
सप्तम पटल का अनुवाद समाप्त

अष्टमः पटलः

(देहे नाडीसङ्ख्याकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

सार्द्धत्रिकोटिनाडीनामालयञ्च कलेवरम् ।
क्रमेण श्रोतुमिच्छामि तद्वदस्व मयि प्रभो ॥१॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे प्रभो! यह शरीर साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों का आश्रय है। उसे मैं क्रम से सुनना चाहती हूँ; कृपया कहिये।।१।।

श्रीशिव उवाच

लोम्नि कूपे सपादार्द्धकोटयश्चैव सुन्दरि ।
हस्तास्ये च तथा पादेऽग्निलक्षनाडयः स्थिताः ॥२॥

श्रीशिव कहते हैं कि रोमकूपों में सपाद अर्द्ध कोटि नाड़ियाँ हैं। हाथ, मुख तथा पैरों में तीन लाख नाड़ियाँ स्थित हैं।।२।।

उदरे च तथा पायौ पञ्चलक्षाः प्रकीर्त्तिताः ।
हृदादिसर्वगात्रेषु नवलक्षाः प्रकीर्त्तिताः ॥३॥

उदर तथा गुह्यदेश में पाँच लाख नाड़ियाँ हैं। हृदयप्रभृति समस्त शरीर में नव लाख नाड़ियाँ कही गयी हैं।।३।।

रुद्रान्न्यूनं स्थितं लक्षं शरीरे नाडयः प्रिये ।
अथ पार्श्वे तथा चर्मे तथैव सर्वसन्धिषु ॥४॥

हे प्रिये! पार्श्व में, चर्म में तथा सन्धियों में उसी प्रकार पूर्वोक्त संख्यक नाड़ियाँ अवस्थित हैं। शरीर में कम से कम ग्यारह लाख नाड़ियां अवस्थित हैं।।४।।

इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना चित्रिणी तथा ।
ब्रह्मनाड़ी च तन्मध्ये पञ्चनाड्यः प्रकीर्त्तिताः ॥५॥

इन सबमें इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, चित्रिणी तथा ब्रह्मा—ये पाँच नाड़ियाँ प्रसिद्ध हैं।।५।।

कुहूश्च शङ्खिनी चैव गान्धारी हस्तिजिह्विका।
नदिनी च तथा निद्रा रुद्रसंख्या व्यवस्थिता।
एता नाड्यः परेशानि सुषुम्नायाः प्रजायते॥६॥

पूर्वोक्त पाँच प्रसिद्ध नाड़ियाँ तथा कुहू, शंखिनी, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, नदिनी तथा निद्रा—ये छः; सब मिलाकर ग्यारह नाड़ियां शरीर में प्रतिष्ठित हैं। हे परमेश्वरि! ये सभी नाड़ियाँ सुषुम्ना से आविर्भूत हैं।।६।।

श्रीदेव्युवाच

वेदाक्षिवसुरन्ध्रास्तु बाणसंख्यजलान्तकाः।
किमाधारे पद्ममध्ये संस्थिताः परमेश्वर॥७॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे परमेश्वर! वेद, अक्षि, वसु, रन्ध्र बाणसंख्यक जलान्तक किस आधार पर पद्ममध्य में अवस्थित है, उसे बताईये।।७।।

श्रीशिव उवाच

योगपद्मस्य महात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते।
मूलाधारे पद्ममध्ये लंबीजं चातिशोभनम्॥८॥
लंबीजस्य बिन्दुमध्ये पृथ्वीचक्रं मनोहरम्।
वलयाकाररूपेण समुद्राः सप्तकाः स्थिताः॥९॥

श्रीशिव कहते हैं—मैं योगपद्म की महिमा को कहने में समर्थ नहीं हूँ। मूलाधार पद्म के मध्य अतिसुन्दर 'लं' बीज विद्यमान है एवं लं बीज के बिन्दुमध्य में अतीव मनोहर पृथ्वीचक्र है, जिसके बाहर वलयाकार रूप में सातो समुद्र स्थित हैं।।८-९।।

श्रीदेव्युवाच

बिन्दुमानं महादेव कथयस्व मयि प्रभो।
क्रमेण योगपद्मस्य प्रमाणं वद शङ्कर॥१०॥

गौरी देवी कहती हैं—हे प्रभो! हे महादेव! हे शंकर! मुझे बिन्दु का परिमाण कहिये एवं क्रम से योगपद्म का भी परिमाण कहिये।।१०।।

श्रीशिव उवाच

परमाणुत्रिभागैकभागं बिन्दुं सुविस्तरम्।
तन्मध्ये सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥११॥
अव्ययं परमं सूक्ष्मं बिन्दुरूपं परं शिवम्।
प्रमाणं चास्य देवस्य किं वक्तुं शक्यते मया॥१२॥

श्रीशिव कहते हैं—सुविस्तर बिन्दु एक परमाणु का तीसरा भाग होता है। इसी में समस्त सागर तथा सप्तद्वीपा पृथ्वी विराजित है। विन्दुरूप परमशिव अव्यय एवं परम सूक्ष्म हैं। इन शिव का परिमाण कहने में मैं समर्थ नहीं हूँ।।११-१२।।

ब्रह्मलोकं परेशानि नादोपरि विचिन्तयेत्।
डाकिनीसहितो ब्रह्मा तथैव निवसेत् सदा ॥१३॥

हे परमेश्वरि! नाद के उपरी भाग में ब्रह्मलोक का चिन्तन करना चाहिये। डाकिनी शक्ति के सहित ब्रह्मा वहाँ निवास करते हैं।।१३।।

लकारं पार्थिवं बीजं शक्तिरूपं सुरेश्वरि।
पृथ्वीचक्रस्य मध्ये तु स्वयम्भूलिङ्गमद्भुतम् ॥१४॥

हे सुरेश्वरि! पार्थिव बीज लकार शक्तिस्वरूप है। पृथ्वी चक्र के मध्य उत्तम स्वयम्भू लिंग विराजित है।।१४।।

सार्द्धत्रिवलयाकारकुण्डल्या वेष्टितं सदा।
लिङ्गच्छिद्रं स्ववक्त्रेण कुण्डल्याच्छाद्य संस्थिता ॥१५॥

यह लिङ्ग सदा सार्द्ध त्रिवलयाकार कुण्डलिनी से वेष्टित रहता है। कुण्डलिनी अपने मुख से इस लिंग के छिद्र को आच्छादित कर अवस्थित रहती है।।१५।।

तेनैव वर्त्तते वायुरिडापिङ्गलयोः सदा।
सहस्रारदर्शनाय सदा जाग्रत्स्वरूपिणी ॥१६॥

इसीलिये इड़ा-पिंगला में सदा वायु विद्यमान रहती है। कुण्डलिनी सहस्रारस्थ परमशिव के दर्शनार्थ सदा जाग्रत् स्वरूप में रहती है।।१६।।

यदैव ब्रह्ममार्गेण सहस्रारे समुत्थिता।
तदैव परमेशानि श्वासोच्छ्वासविकासनम् ॥१७॥

हे परमेश्वरि! ब्रह्ममार्ग के द्वारा कुण्डलिनी जिस समय सहस्रार में प्रवेश करती है, उसी समय श्वास-प्रश्वास का विकास होता है।।१७।।

केशरस्य तु मध्ये च चतुःपत्रे सुरेश्वरि।
अनन्तरूपिणी दुर्गा शम्भुश्चानन्तरूपधृक्।
नानासुखविलासेन सदा कामेन वर्त्तते ॥१८॥

हे सुरेश्वरि! केशर के मध्य में चतुर्दल में नाना मूर्त्तिधारिणी अनन्तरूपा दुर्गा एवं अनन्त रूपधारी शम्भु इच्छानुरूप नाना सुखविलास के साथ वर्त्तमान रहते हैं।।१८।।

श्रीदेव्युवाच

लिङ्गच्छिद्रं समाकृष्य संस्थिता कुण्डली कथम् ।
कथयस्व सदानन्द सर्वज्ञस्त्वं सुरेश्वर ॥१९॥

देवी कहती हैं—कुण्डलिनी लिंगच्छिद्र का आच्छादन करके क्यों स्थित रहती है। हे सदानन्द! सुरेश्वर! आप सर्वज्ञ हैं, अतः इसे मुझे बताइये।।१९।।

श्रीशिव उवाच

लिङ्गमध्ये महत्तेजो वह्निरूपं च सुन्दरि ।
यत्किञ्चिद्वायुयोगेन ब्रह्माण्डो दह्यते सदा ॥२०॥
अतः सा कुण्डली देवी मुखेनाच्छाद्य संस्थिता ।
तेनैव पार्थिवे लिङ्गे बिन्दुशक्तिं नियोजयेत् ।
बिन्दुशक्तिं समुत्थाप्य लिङ्गपूजा प्रकीर्त्तिता ॥२१॥

इति तोडलतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरगौरीसंवादे अष्टमः पटलः

श्रीशिव कहते हैं—हे सुन्दरि! लिंगमध्य में वह्निरूप महातेज रहता है; जो कि थोड़े-बहुत वायु के संसर्ग से भी ब्रह्माण्ड पूर्ण रूप से जला सकता है; इसी कारण कुण्डलिनी सदा-सर्वदा उसे आच्छादित किये रहती है। इसीलिये पार्थिव लिंग में भी विन्दुयोजना होती है और उस विन्दुशक्ति को जागृत करके ही शिवलिंग-पूजन करना कहा गया है।।२०-२१।।

हर-गौरीसंवादात्मक सभी तन्त्रों में उत्तम तोडलतन्त्र के
अष्टम पटल का अनुवाद समाप्त

नवमः पटलः

(नवार्णमन्त्रवासना, दीर्घायुलाभकरणम्, षट्चक्रभावना, कुण्डलिन्याः मालारूपकत्वम्, मालाजपफलम्, षट्-चक्रजपफलम्, भूतकात्यायनीमन्त्रः, भूतकात्या-यनीध्यानम्, भूतकात्यायनीपूजाप्रयोगः, काकीचञ्चुमुद्रा, स्वल्पयोनिमुद्रा, दशावतारकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

त्रिपुराया महामन्त्रं नित्यातन्त्रे श्रुतं मया।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि नवार्णस्य च वासनाम् ॥१॥

श्रीदेवी कहती हैं—मैंने नित्यातन्त्र में त्रिपुरा का महामन्त्र सुना है। अब नवार्ण मन्त्र की वासना सुनना चाहती हूँ।।१।।

श्रीशिव उवाच

भूमिश्चन्द्रः शिवो माया शक्तिः कृशानुसादनौ।
अर्द्धचन्द्रश्च बिन्दुश्च नवार्णो मेरुरुच्यते ॥२॥
भूमिबीजजपादेव भूपतिर्जायतेऽचिरात्।
चन्द्रबीजजपादेव महासौन्दर्यमाप्नुयात् ॥३॥
शिवबीजजपादेव शिवद्विहरेत् क्षितौ।
एकत्रोच्चारणात् सत्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥४॥

श्री शिव कहते हैं—भूमिबीज, चन्द्रबीज, शिवबीज, मायाबीज, शक्तिबीज, अग्निबीज, यमबीज, अर्द्धचन्द्र एवं विन्दु—इस नवार्ण को मेरु कहा गया है। साधक भूमिबीज का जप करने से शीघ्र राजा होता है, चन्द्रबीज के जप से महासौन्दर्य प्राप्त करता है, शिवबीज के जप से पृथ्वी पर शिव के समान होकर विचरण करता हैं; लेकिन इन सभी बीजों का एक साथ उच्चारण करने से चतुर्वर्गरूप फल की प्राप्ति होती है।।२-४।।

श्रीदेव्युवाच

यत्त्वया कथितं नाथ योगज्ञानादिकं लयम्।
यावत् कामादि सन्दीप्यो भावयोगो न लभ्यते ॥५॥
ऊर्ध्वरिता महायोगी तदधः शक्तियोगतः।
ब्रूहि मे जगतां नाथ कथं दीर्घायुषं भवेत् ॥६॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे नाथ! आपने योगज्ञान तथा लय को कहा; लेकिन जब तक कामादि सन्दीप्त रहते हैं, तब तक भावयोग की प्राप्ति नहीं हो सकती। जो ऊर्ध्वरिता हैं, वे महायोगी होते हैं। शक्तियोग उसकी अपेक्षा अधम होता है। अतः हे जगन्नाथ! किस प्रकार से लोक में दीर्घायु की प्राप्ति होती है, वह मुझसे कहिये।।५-६।।

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि येन दीर्घायुषं भवेत्।
श्रुत्वा गोपय यत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन ॥७॥

श्रीशिव कहते हैं—हे देवि! जिससे दीर्घायु की प्राप्ति होती है, उसे अब मैं कहता हूँ। सुनने के पश्चात् इसे यत्नपूर्वक गुप्त ही रखना; कभी भी प्रकाशित नहीं करना।।७।।

पूजयेत् कालिकां देवीं तारिणीं वाथ सुन्दरीम्।
षोडशेनोपचारेण पञ्चतत्त्वेन पार्वति ॥८॥

हे पार्वति! पञ्चतत्त्व के साथ सोलह उपचारों द्वारा कालिका, तारिणी तथा सुन्दरी (त्रिपुरसुन्दरी) का पूजन करना चाहिये।।८।।

दिनत्रयं पूजयित्वा षट्चक्रं चिन्तयेदथ।
ततस्तु परमेशानि मालामन्त्रं समभ्यसेत् ॥९॥

उपर्युक्त देवियों की उक्त रूप से तीन दिन पूजा करने के पश्चात् षट्चक्र का चिन्तन करना चाहिये। हे परमेश्वरि! तदनन्तर मालामन्त्र का अभ्यास करना चाहिये।।९।।

षोडशे वा महापूर्वे पत्रे चाभ्यासमाचरेत्।
चतुःपत्रे चाष्टवारं षट्पत्रे द्वादशं जपेत् ॥१०॥

महापत्र में सोलह बार मालामन्त्र का अभ्यास करना चाहिये। इसी प्रकार चतुःपत्र में आठ बार एवं षट्पत्र में बारह बार जप करना चाहिये।।१०।।

दशपत्रे विंशतिञ्च द्वादशे वेदनेत्रकम्।
षोडशे दशसंख्यं तु चतुर्वारं भ्रुवोऽन्तरम् ॥११॥

दशपत्र में बीस बार एवं द्वादश पत्र में चौंतीस बार मालामन्त्र का जप करना चाहिये। षोडश पत्र में दश बार एवं भ्रूद्वय के मध्य में चार बार मालामन्त्र का जप करना चाहिये।।११।।

कुम्भकेन जपेन्मन्त्रं मालाषट्के सुरेश्वरि।
एवं क्रमेण देवेशि स्थिरवायुर्यदा भवेत्।
प्रजपेदक्षमालायां येन मृत्युञ्जयो भवेत्॥१२॥

हे सुरेश्वरि! छः माला जप कुम्भक द्वारा करना चाहिये। हे देवि! इस क्रम से जब वायु स्थिर हो जाय तब अक्षमाला से जप करना चाहिये। इससे साधक मृत्यु को जीत लेने वाला हो जाता है।।१२।।

श्रीदेव्युवाच

मूलचक्राच्छिरोऽन्ता च सुषुम्ना परिकीर्त्तिता।
तद्गर्भस्था च या शक्तिः सा देवी कुण्डरूपिका॥१३॥
सदा कुण्डलिनी देवी पञ्चाशद्वर्णभूषिता।
मालारूपा कथं देव इति मे संशयो हृदि॥१४॥

श्रीदेवी कहती हैं—मूल चक्र से शिरः-पर्यन्त सुषुम्ना नाड़ी प्रसरित है। उसके अन्तर्गत जो शक्ति है, वही कुण्डलिनी है। ये सर्वदा पचास वर्णों से भूषित होकर मालारूप कैसे हो गयीं? हे देव! मेरे हृदय में यह संशय है।।१३-१४।।

श्रीशिव उवाच

सहस्रारे महापद्मे बीजकोषे शिवालये।
हंसेन वायुयोगेन पूरकेण समानयेत्॥१५॥

श्रीशिव कहते हैं—शिव के निवासभूत सहस्रार महापत्र में (बीजकोष में) हंसमन्त्र से पूरक करते हुये वायु की सहायता से कुण्डलिनी को लाना चाहिये।।१५।।

सहस्रारन्तु सम्प्राप्य शिवं दृष्ट्वा तु कामिनी।
मालाकारेण तल्लिङ्गं संवेष्ट्य कुण्डली सदा॥१६॥

कुण्डलिनी सहस्रार पद्म में उपस्थित होकर परमशिव का दर्शन पाकर मालाकार रूप से उस लिंग का वेष्टन करके सदा विद्यमान रहती है।।१६।।

अकारादिलकारान्ता क्षकारं वक्त्रसंयुतम्।
चरमार्णं सरन्ध्रं च निजपुच्छेन कामिनी॥१७॥

'अ' से 'ल'-पर्यन्त वर्ण परस्परतः मिलित हैं। क्षकार मुख से संयुक्त है। कुण्डलिनी ही सरन्ध्र परम वर्ण को अपनी पुच्छ से युक्त करके स्थित है।।१७।।

भेदयित्वा स्वपुच्छेन नागपाशं तदूर्ध्वके।
एतत्कारणं सव्याप्य संस्थिता कुण्डली यदा॥१८॥

कुण्डलिनी सहस्रार पद्म के ऊर्ध्व में अपनी पुच्छ से नागपाश का भेदन करके उन परमकारण शिव को व्याप्त करके अवस्थान करती है।।१८।।

तदैव प्रजपेन्मन्त्रममरत्वं स विन्दति।
रेचनात्कामिनी देवी प्रविशन्ति स्वकेतनम्॥१९॥

इसके पश्चात् मन्त्रजप करना चाहिये; इससे अमरत्व प्राप्त होता है। रेचन करने से कुण्डलिनी पुनः अपने स्थान में चली जाती है।।१९।।

न तत्र प्रजपेन्मन्त्रं जपान्मृत्युमवाप्नुयात्।
रेचके छिन्नमालायां सत्यं हि सुरवन्दिते॥२०॥
छिन्ने सूत्रे भवेन्मृत्युः पुरैव कथितं मया।
इति ते कथितं कान्ते यतो मृत्युञ्जयो भवेत्॥२१॥

उस समय मन्त्रजप नहीं करना चाहिये; जप करने से मृत्यु हो जाती है (जब कुण्डलिनी अपने स्थान में वापस जाती हो, तब मन्त्रजप निषिद्ध हैं); क्योंकि रेचक में सूत्र तथा माला छिन्न हो जाती है; अतः मृत्यु निश्चित है। हे कान्ते! इस प्रकार जिससे व्यक्ति मृत्युंजय होता है, उस विधि को तुमसे कहा।।२०-२१।।

अथवा निजनासाग्रे दृष्टिमारोप्य यत्नतः।
वायुं सन्धार्य यत्नेन एकोच्चारेण चोच्चरेत्॥२२॥

अथवा अपने नासाग्र पर यत्नपूर्वक दृष्टि स्थापित करके वायु को धारण करके यत्न के साथ एक ही बार में उच्चारण करना चाहिये (इसका तात्पर्यार्थ क्या है, यह गुरुगम्य है। यहाँ यह वर्णित नहीं है कि किस उच्चारण का उच्चारण करे)।।२२।।

मालामन्त्रं षोडशीं वा तथा चाष्टादशाक्षरीम्।
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं प्रत्यहं यदि पार्वति॥२३॥
जित्वा मृत्युं जरारोगं दीर्घकालं स जीवति।
एतदन्यं महायोगं भोगार्थी न हि लभ्यते॥२४॥

हे पार्वति! यदि नित्य मालामन्त्र, षोडशी मन्त्र अथवा अष्टादशाक्षर मन्त्र का एक

हजार जप किया जाय, तब जरा, रोग एवं मृत्यु को जीत कर वह साधक दीर्घ काल तक जीवित रहता है। भोगार्थी भी किसी अन्य महायोग को प्राप्त नहीं होता।।२३-२४।।

अथवा परमेशानि डामरोक्तविधानतः।
यजेत्कात्यायनीं देवीं भूतपूर्वां प्रयत्नतः ॥२५॥

अथवा हे परमेश्वरि! डामरतन्त्रोक्त विधान से यत्नपूर्वक भूतकात्यायनी देवी की पूजा करनी चाहिये।।२५।।

तदा पञ्चसहस्राब्दं निश्चितं तु स जीवति।
इति ते कथितं सर्वं देहरक्षणकारणम् ॥२६॥
न भोगी भोगमाप्नोति योगी योगो न लभ्यते।
एतत् तत्त्वेन देवेशि भोगो योगायते ध्रुवम् ॥२७॥

इस कात्यायनी-पूजा से साधक पाँच हजार वर्ष तक जीवित रह सकता है। इस प्रकार देहरक्षा से सम्बन्धित सभी उपायों को तुमसे कहा। इससे भोगी न तो भोग को प्राप्त करता है और न ही योगी योग को प्राप्त करता है। हे देवेशि! इस तत्त्व द्वारा भोग भी योगतुल्य हो जाता। है।।२६-२७।।

श्रीदेव्युवाच

यन्मालायां जपेनैव किं फलं लभते नरः।
पृथक् पृथक् महादेव पत्रमालाफलं वद ॥२८॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे महादेव! साधक मालाजप द्वारा जो फल प्राप्त करता है, वह मुझसे पृथक्-पृथक् कहिये। पत्ररूप माला के जप का फल भी कहिये।।२८।।

श्रीशिव उवाच

भूमिकामी जपेन्मन्त्रं मूलाधारे चतुष्टये।
स्वाधिष्ठाने जपादेव महेन्द्रो जायतेऽचिरात् ॥२९॥

श्रीशिव कहते हैं कि भूमिकामी को मूलाधार के चार पत्रों (दलों) में मन्त्रजप करना चाहिये। इसी प्रकार स्वाधिष्ठान के छ पत्रों से जप करने से शीघ्र ही महेन्द्रत्व की प्राप्ति होती है।।२९।।

मणिपूरे जपादेव भवेत् स्वर्गस्य भाजनम्।
अनाहते महापद्मे जपाद् ब्रह्मपुरं व्रजेत् ॥३०॥

मणिपूर चक्र के दलों (पत्रों) में जप करने पर स्वर्ग प्राप्त होता है एवं अनाहत चक्र के पत्रों में जप करने पर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।।३०।।

विशुद्धाख्ये जपादेव विष्णुलोके वसेद् ध्रुवम्।
आज्ञाचक्रे च जप्तव्ये श्वेतद्वीपे वसेत् सदा॥३१॥

विशुद्धचक्र के पत्रों में जप करने पर निश्चित रूप से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। आज्ञा चक्र के दो पत्रों (दलों) में जप करने पर सदैव श्वेतद्वीप में स्थान प्राप्त होता है।।३१।।

यन्माला परमेशानि बाह्यमाला प्रकीर्त्तिता।
अन्तर्माला महामाला पञ्चाशद्वर्णरूपिणी॥३२॥

हे परमेशानि! ये छः मालायें बाह्यमाला कही गयी हैं। पचास वर्णरूपिणी अन्तर्माला ही महामाला है।।३२।।

माहात्म्यं तस्य देवेशि किं वक्तुं शक्यते मया।
सहस्रारे स्थिरीभूय यदि चाष्टशतं जपेत्॥३३॥
तत्फलात् कोटिभागैकं भागं नान्येन विद्यते।
पृथिव्यामव्ययो देहो भवत्येव न संशयः॥३४॥

हे देवेशि! उसका माहात्म्य मैं कैसे कह सकता हूँ? यदि साधक सहस्रार पद्म में स्थित होकर आठ सौ जप करता है तो उसके करोड़वें भाग का भी फल अन्य जप से नहीं प्राप्त होता। इससे साधक का शरीर पृथ्वी पर निःसन्दिग्ध रूप से अव्यय हो जाता है।।३३-३४।।

षण्मालायां जपेन्मन्त्रमभ्यासार्थं हि पार्वति।
इति ते कथितं देवि! चिरञ्जीवी यथा भवेत्॥३५॥

हे पार्वति! अभ्यास के लिये ही छः माला से मन्त्रजप करना चाहिये। हे पार्वति! इस प्रकार जिस प्रकार से व्यक्ति चिरञ्जीवी होता है, उसे तुमसे कहा।।३५।।

इदानीं परमेशानि भूतकात्यायनीं शृणु।
वेदाद्यं शब्दबीजञ्च महामायां ततः परम्॥३६॥
अस्त्रयुग्मं वह्निजाया मनुः सप्ताक्षरं परः।
श्रीशिवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदाहृतम्॥३७॥

हे परमेशानि! अब भूतकात्यायनी देवी का मन्त्र-ध्यान आदि का श्रवण करो। वेदाद्य (ॐ), शब्दबीज (हुं), महामाया (ह्रीं); तदनन्तर दो अस्त्र (फट्) तथा वह्निजाया (स्वाहा)—यह भूतकात्यायनी का श्रेष्ठ सप्ताक्षर मन्त्र है। श्रीशिव इस मन्त्र के ऋषि एवं विराट् छन्द कहा गया है। मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—ॐ हुं ह्रीं फट् स्वाहा।।३६-३७।।

भूतकात्यायनी देवी धर्मार्थकामदा सदा।
प्रणवेन षडङ्गञ्च प्राणायामञ्च सुन्दरि।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि शृणु सुन्दरि सादरम्॥३८॥

भूतकात्यायनी देवी सर्वदा धर्म-अर्थ-काम देने वाली होती है। हे सुन्दरि! प्रणव से षडङ्ग न्यास तथा प्राणायाम करना चाहिये। हे सुन्दरि! अब इन देवी का ध्यान कहता हूँ, आदरपूर्वक श्रवण करो।।३८।।

गौरवर्णां मुक्तकेशीं सर्वाभरणभूषिताम्।
पट्टवस्त्रपरीधानां सदा घूर्णितलोचनाम्॥३९॥
वामपाणौ रक्तपूर्णखर्परं दक्षिणे करे।
मद्यपूर्णस्वर्णपात्रां ग्रीवायां हारभूषिताम्॥४०॥
शरच्चन्द्रसमाभासां पादाङ्गुलिविराजिताम्।
एवं तां वरदां नित्यां भावयेत् सिद्धिहेतवे॥४१॥

यह देवी गौरवर्णा मुक्तकेशी समस्त आभरणों से भूषित, पट्ट वस्त्रधारिणी, सर्वदा मद से घूर्णित नेत्रों वाली, शरद् कालीन चन्द्रमा के समान द्युतिमती, पादांगुलि से शोभित—इस प्रकार वर देने वाली देवी की भावना करनी चाहिये। इनके वाम हाथों में रक्त टपकता हुआ खर्पर विद्यमान है एवं दाहिने हाथ में मद्यपूर्ण स्वर्णपात्र है। ग्रीवा में हार सुशोभित है। सिद्धि-प्राप्ति के लिये इस प्रकार देवी का ध्यान करना चाहिये।।३९-४१।।

सामान्यार्घ्यं ततो देवी स्ववामे विन्यसेत्ततः।
जीवन्यासादिकं कृत्वा पूजयेत् परमेश्वरीम्।
षोडशेनोपचारेण पञ्चतत्त्वेन सुन्दरि॥४२॥

हे देवि! तदनन्तर अपने वाम भाग में सामान्यार्घ्य स्थापित करना चाहिये। हे सुन्दरि! जीवन्यास (प्राणप्रतिष्ठा) करके पञ्चतत्त्व (मद्य-मांसादि) के साथ षोडशोपचार से देवी का पूजन करना चाहिये।।४२।।

यजेत्तां बहुयत्नेन गृहमध्ये दिनत्रयम्।
ततो जपेन्महामन्त्रं गजान्तकसहस्रकम्॥४३॥

गृह में तीन दिन यत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर गजान्तक (एक हजार आठ) महामन्त्र का जप करना चाहिये।।४३।।

ततश्च पूजयेद् देवीं शून्यागारे दिनत्रयम्।
प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्रं गजान्तकसहस्रकम् ॥४४॥

तदनन्तर शून्य गृह में तीन दिन तक पूजन करते हुये वहाँ प्रतिदिन मन्त्र का एक हजार जप करना चाहिये।।४४।।

एवं कृते महेशानि यदि सिद्धिर्न जायते।
ततश्च प्रजपेन्मन्त्रं पितृभूमौ दिनत्रयम् ॥४५॥

हे महेश्वरि! यदि इतने पर भी सिद्धि न प्राप्त हो तब पितृभूमि में जाकर तीन दिन पुनः यही क्रिया करनी चाहिये।।४५।।

ततः सिद्धिर्भवेद् देवि सत्यं सत्यं हि सुप्रिये।
तद्वाक्यं प्रार्थनावाक्यं डामराख्ये मयोदितम् ॥४६॥

इति तोडलतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरगौरीसंवादे नवमः पटलः

हे सुप्रिये! हे देवी! तब निश्चय ही सिद्धि प्राप्त होती है; यह पूर्णतः सत्य है। डामरतन्त्र में भी मैंने यही वाक्य कहा है।।४६।।

हर-गौरीसंवादात्मक सभी तन्त्रों में उत्तम तोडलतन्त्र के
नवम पटल का अनुवाद समाप्त

समाप्तमिदं तोडलतन्त्रम्

●

तन्त्रशास्त्र के महत्वपूर्ण ग्रन्थ-मूल संस्कृत एवं हिन्दी टीका सहित

- **तन्त्रसार** : परमहंस मिश्र (1-2 भाग)
- **कुलार्णवतन्त्रम्** : परमहंस मिश्र
- **नित्योत्सव** : (श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ) परमहंस मिश्र
- **त्रिपुरारहस्यम्** : (ज्ञान एवं महात्म्य खण्ड) जगदीशचन्द्र मिश्र (1-2 भाग)
- **तन्त्रालोक** : राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- **स्वच्छन्दतन्त्रं** : राधेश्याम चतुर्वेदी (1-2 भाग)
- **नेत्रतन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
- **कामाख्यातन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
- **महाकालसंहिता** : (कामकला-कालीखण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी
- **महाकालसंहिता** : (गुह्यकाली-खण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- **रुद्रयामलम्** : सुधाकर मालवीय (1-2 भाग)
- **शारदातिलकम्**-सुधाकर मालवीय (1-2 भाग)
- **मन्त्रमहोदधि** : सुधाकर मालवीय
- **लक्ष्मीतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **तन्त्रराजतन्त्रम्**-कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **महानिर्वाणतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
- **कामकलाविलास** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **वरिवस्यारहस्यम्** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **स्पन्दकारिका** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **सर्वोल्लासतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **नीलसरस्वतीतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **भूतडामरतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **अन्नदाकल्पतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **त्रिपुरार्णवतन्त्रम्** : जगदीशचन्द्र मिश्र
- **विज्ञानभैरव** : बापूलाल अँजना
- **श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्** । कपिलदेवनारायण (1-5 भाग सम्पूर्ण)
- **देवीरहस्यम्** : (रुद्रयामलतन्त्रोक्तम्) कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **स्वर्णतन्त्र** : भाषा टीका
- **महानिर्वाणतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
- **बृहत्तन्त्रसार** : कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **सौन्दर्यलहरी** : लक्ष्मीधरी टीका सहित सुधाकर मालवीय
- **सिद्धसिद्धान्तपद्धति** : द्वारकादास शास्त्री
- **आगमतत्त्वविलास** : एस.एन.खण्डेलवाल (1-4 भाग सम्पूर्ण)
- **राधातन्त्रम्** : एस.एन. खण्डेलवाल
- **सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्रम्** एस.एन.खण्डेलवाल

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी द्वारा हिन्दी में लिखित
तंत्र विषयक महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थ

- **श्रीविद्या-साधना** : (श्रीविद्या-उपासना का साङ्गोपाङ्ग शास्त्रीय विवेचन) (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- **भारतीय शक्ति-साधना** : (शक्ति-विज्ञानः स्वरूप एवं सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन)
- **ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना** : (महाविद्याबगला-उपासना का शास्त्रीय विवेचन)
- **काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र** : (शिवसूत्र, शक्तिसूत्र एवं स्पन्दसूत्र के सन्दर्भ में)
- **मुद्राविज्ञान एवं साधना** : (नित्यकर्मीय एवं तान्त्रिक मुद्राओं का सचित्र एवं शास्त्रीय विवेचन)

श्रीदक्षिणकालिका-सपर्यापद्धति

(दक्षिणकालिका-पूजक प्रबन्ध)

डॉ. रामप्रिय पाण्डेय

वितरक
चौखाम्बा पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली - 110002
फोन न. 011-23286537, 32996391

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001
फोन न. 0542-2335263, 2335264

निर्वाणतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

निवेदन

प्रस्तुत निर्वाणतन्त्र को मूलत: कौलसाधना-परक ग्रन्थ कहा जा सकता है। यह एक प्रकार से उपतन्त्र है। इसमें कौलसाधनान्तर्गत पञ्चतत्त्व(पञ्च मकार)परक साधना को इंगित करने के साथ-साथ उसके रहस्यों का उद्घाटन करते हुये जिस प्रकार की संकेतात्मक पद्धति अपनाई गई है उससे प्रतीत होता है कि उच्चस्तरीय कौलगुरु के लिये विधानात्मक निर्देश देने-हेतु इसका प्रणयन किया गया है, जो कि प्राथमिक विधान के पूर्ण वेत्ता होते हैं। उनके अतिरिक्त इसके सांकेतिक विधान सामान्य साधक के लिये बोधगम्य प्रतीत नहीं होते; क्योंकि क्रियाकाण्ड के सम्बन्ध में, पुरश्चरण-विधान के सम्वन्ध में इसमें केवल संकेत ही दिया गया है और मूलत: भगवती के 'दशार्ण मन्त्र' का ही उद्घाटन किया गया है, जो परवर्त्ती पटलों में कई स्थानों पर विवेचित है। इसलिये इसमें निहित तत्त्वों को जानने के लिये अनुसन्धित्सुओं के लिये 'आगमतत्त्वविलास' 'सर्वोल्लासतन्त्र' के साथ-साथ अन्य कौलसाधना-परक ग्रन्थों का अध्ययन करना आवश्यक है। ऐसा करने पर ही इस ग्रन्थ के साधनतत्त्वमय महत्त्व का वास्तविक आकलन किया जा सकेगा।

शारदीय नवरात्र, सन् २०११ **एस. एन. खण्डेलवाल**

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

हिन्दीभाष्यकारः श्रीकपिलदेवनारायण

'श्रीविद्या' शब्द श्रीत्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र एवं उसके अधिष्ठात्री देवता—इन दोनों का बोधक है। सामान्यता 'श्री' शब्द 'लक्ष्मी' अर्थ में प्रसिद्ध है; परन्तु हारितायन संहिता, ब्रह्माण्डपुराण-उत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासों में वर्णित आखियायिकाओं के अनुसार 'श्री' शब्द का मुख्य अर्थ 'महात्रिपुरसुन्दरी' ही है। श्री महालक्ष्मी ने महात्रिपुरसुन्दरी की चिरकाल-पर्यन्त आराधना कर जो अनेक वरदान प्राप्त किये हैं, उनमें एक वरदान 'श्री' की आख्या से लोक में ख्याति प्राप्त करने का भी है। अस्तु; 'श्री' शब्द का 'महालक्ष्मी' अर्थ तो गौण ही है; मुख्य अर्थ है—'श्री' अर्थात महात्रिपुरसुन्दरी की प्रतिपादिका विद्या—मन्त्र = 'श्रीविद्या'। वाच्य एवं वाचक का भेद मानकर इस मन्त्र की अधिष्ठात्री देवता भी 'श्रीविद्या' ही सिद्ध होती है। इस श्रीविद्या के उपासकों को लौकिक फल तो प्राप्त होते ही है; आत्मज्ञानी को प्राप्त होने वाला शोकोत्तीर्णतारूप फल भी श्रीविद्यापासकों को निश्चित रूप से प्राप्त होता है; साथ ही यही फल ब्रह्मविद्या से भी प्राप्त होता है; अतः फलैक्य होने के कारण श्रीविद्या ही ब्रह्मविद्या है—यह निर्विवाद सत्य प्रतिष्ठापित होता है।

'श्रीविद्या' का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करने वाला सर्वप्रामाणिक महनीय ग्रन्थ 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' न केवल श्री विद्या; अपितु दश महाविद्याओं के विशद् विवेचन के साथ-साथ शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, सौर आदि सभी मन्त्रों एवं उनके तत्तद् यन्त्रों से पाठक को साक्षात्कार कराने वाला एक बृहत्काय ग्रन्थ है। स्वामी विद्यारण्य यति द्वारा छत्तीस श्वासों में गुम्फित यह ग्रन्थरत्न पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध रूप दो खण्डों में समुपलब्ध है। अंग-उपांगसहित श्रीविद्या के सविधि विवेचन के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं के भी मन्त्र-यन्त्रों का समग्र रूप मे विवेचन, उनके उपसना की विधि एवं उपासना के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले फलों को स्पष्टतया अभिव्यक्त करना इस ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता है। अन्य ग्रन्थों में जहाँ किसी भी उपस्य देवता के एक, दो, चार अथवा कतिपय प्रमुख मन्त्र-यन्त्रों का ही विवेचन उपलब्ध होता है; वही इस ग्रन्थ में विवेच्य समस्त देवी-देवताओं के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी मन्त्र-यन्त्रों को उनकी विधियों सहित स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है; फलस्वरूप सम्बद्ध देवता के किसी भी मन्त्र-यन्त्र अथवा उसकी विधि को जानने के लिये साधक को किसी अन्य ग्रन्थ का अवलम्ब ग्रहण करने की लेशमात्र भी आवश्यकता नही रह जाती। संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रीविद्यारण्य यति-प्रणीत 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जो साधक के समस्त कामनाओं की पूर्ति करने में सर्वतोभवेन समर्थ है।

अस्तु; यह ग्रन्थ अद्यावधि अपने मूल स्वरूप में ही, विना किसी भाषा-टीका के उपलब्ध था, जिससे जिज्ञासु साधकों को आराधना में पग-पग पर दुरूह कठिनाइयों का अनुभव होता था एवं ग्रन्थ के ताप्तर्य से अवगत ने हो पाने के कारण वे वार-वार विशयग्रस्त हो जाते थे। इसी को हृदयङ्गम कर तन्त्रग्रन्थों के ख्यातिनाम भाषा-भाष्यकार श्री कपिलदेव नारायण ने इस विशालकाय ग्रन्थ को भाषा टीका से अलंकृत कर सर्वनहृद्य बनाने का साहसिक प्रयास किया है। सर्वनसुलभी इस हिन्दी भाष्य द्वारा श्री नारायण ने कृटाक्षर में निवद्ध मन्त्र-यन्त्रों को भी स्पष्ट करके साधकों का महनीय उपकार किया है।

पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध के विभाजन से दो भागों में विभक्त यह विशालकाय ग्रन्थ भाषा-भाष्य से अलंकृत होने के फलस्वरूप और भी वृहद् कलेवर को प्राप्त हो गयाः फलस्वरूप जिज्ञासुओं के सौकर्य को दृष्टिगत कर इसे पाँच भागों (पूर्वार्द्ध—दो भाग एवं उत्तरार्द्ध—तीन भाग) में प्रकाशित किया जा रहा है। वृहत्तन्त्रसार, देवीरहस्य आदि मूल ग्रन्थों को सर्वजनसंवेद्य भाषा भाष्य से विभूषित कर सर्वजन सुलभ बनाने वाले विद्धान् भाष्यकार श्री कपिलदेवनारायण द्वारा प्रयोगपरक भाषा भाष्य से अलंकृत यह ग्रन्थ जिज्ञासुओं की समस्त जिज्ञासाओं का शमन करने में सर्वविध समर्थ होगा—इसमें विचिकित्सा के लिये लेशमात्र भी स्थान नही है।

सैट (पाँच भागों में) **मूल्य : 7500.00**

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन-वाराणसी

विषयानुक्रम

पटल पृष्ठाङ्क

प्रथम पटल १

(जगदुत्पत्ति-विषयक चण्डिका का शिव से प्रश्न एवं उसका समाधान, ब्रह्माण्ड के आकार का विवेचन, ब्रह्म संज्ञक पुत्रकी उत्पत्ति, कालिका का ब्रह्मा के लिये विवाह का परामर्श, शिव-शक्ति के आठ विभाग का निरूपण, ब्रह्म-निरूपण)

द्वितीय पटल ६

(पार्थिव जीव-सृष्टि-जन्म-मृत्यु-पिण्डदानादि का वर्णन)

तृतीय पटल १०

(प्रकृति से जगत् की सृष्टि, गायत्री का स्वरूप, षडंगन्यास मन्त्र, जीवन्यासादि द्वारा गायत्री-पूजा, आपोमार्जन, शिरःस्थित महापद्म में महादेव रूप परमगुरु को प्रणाम आदि)

चतुर्थ पटल १७

(संन्यासी, अवधूत, ब्रह्मचारी, गृहस्थ का वर्णन, बृहद् ब्रह्माण्ड का स्वरूप, योग-वर्णन)

पञ्चम पटल २०

(भूरादि लोक-वर्णन, गोलोक-वर्णन, वैकुण्ठ-वर्णन, विष्णुसेवा, राधाकृष्ण भजनादि से विष्णुलोक की प्राप्ति का वर्णन)

षष्ठ पटल २६

(महापद्म तथा रुद्रालय-वर्णन, महाविद्या तथा भद्रकाली की कृपा से त्रिदेव द्वारा ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति तथा संहारकार्य)

सप्तम पटल २८

(महापद्म के ऊर्ध्व में भुवनेश्वरी विद्या, भूः-भुवः तथा स्वर्लोक में त्रिदेवों का अवस्थान, भुवनेश्वरी की ही शक्ति शिव में क्रियाशील, महर्लोक का वर्णन)

पटल **पृष्ठाङ्क**

अष्टम पटल ३१
(षोडश पत्रयुक्त पद्म का वर्णन, सदाशिव तथा महागौरी-महिमा)

नवम पटल ३४
(ज्ञानपद्म का स्वरूप, तपः महः जनः लोकों में मुक्ति आदि का विवरण, शम्भु-कीर्त्तन से मुक्तिप्राप्ति)

दशम पटल ३८
(सुमेरु के ऊपर सहस्रदल का वर्णन, ब्रह्मादि की दिव्य भाव में स्थिति, चौदह भुवन, सात पाताल एवं सात स्वर्ग-वर्णन, विष्णुसृष्टि-वर्णन, कल्पवृक्षस्थ ज्योतिर्मण्डल में चणकाकार सदाशिव एवं महाकाली-वर्णन, सत्यलोक के बीजकोष में निरंजन स्वरूप का ध्यानादि-वर्णन, आद्या शक्ति महाकाली के नाम से मृत्युभय का नाश)

एकादश पटल ४७
(श्री चण्डिका के प्रश्न के उत्तर में शिव द्वारा पञ्चतत्त्व (पञ्चमकार) का उपदेश)

द्वादश पटल ५३
(वैष्णवों के पञ्चतत्त्व का निरूपण)

त्रयोदश पटल ५५
(दशार्ण मन्त्र का स्वरूप, श्रीगुरुतत्त्व, गृहस्थ के कर्त्तव्य, संन्यास का अधिकारी कौन? कामादि छः शत्रुओं पर जय करके ही पञ्चमकार का सेवन, दण्डी के कर्त्तव्य, संन्यास-वर्णन)

चतुर्दश पटल ६६
(अवधूत-निर्णय, अवधूत के कर्त्तव्य, वीरभाव से मुक्ति की प्राप्ति, परमहंस अवधूताचार-वर्णन, अवधूत शरणागत भक्त-प्रशंसा, गृहस्थ ब्रह्मचारी के लक्षण एवं उनके आचरण का वर्णन)

पञ्चदश पटल ७३
(शम्भु-अर्चन, शम्भु का पञ्चाक्षर एवं षडक्षर मन्त्र, शम्भु के विविध रूप, नीलकण्ठ-पूजा का निषेध, पार्थिव शिवपूजन, शिव की आठ मूर्त्तियों का पूजन, शिवपूजा के अनन्तर शक्तिपूजा का आवश्यकत्व, देवपूजा में प्रथमतः शिव-पूजन)

।।श्रीः।।

निर्वाणतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

प्रथमः पटलः

ॐ नमः परमदेवतायै

कैलासपर्वते रम्ये नानारत्नोपशोभिते।
विपरीतरताशक्ता चण्डी पप्रच्छ शङ्करम्।।१।।

बहुविध प्रकार के रत्नों से सुशोभित रमणीय कैलास पर्वत पर विपरीत रति में आसक्त चण्डी देवी ने भगवान् शंकर से पूछा।।१।।

श्रीचण्डिका उवाच

निराकारं निर्गुणञ्च स्तुतिनिन्दाविवर्जितम्।
सुनित्यं सर्वकर्त्तारं वर्णातीतं सुनिश्चलम्।।२।।
संज्ञाविरहितं शान्तं किमाकारं प्रतिष्ठितम्।
तस्मादुत्पत्तिर्देवेश किमाकारेण जायते।।३।।

श्री चण्डी कहती हैं—हे देवाधिदेव! जिन्हें सबका कर्त्ता कहा जाता है, उन्हें ही आकार-रहित, गुणहीन, स्तुति-निन्दा से रहित, सुनित्य, समस्त वर्णो से अतीत, सुनिश्चल, नाम-परिचय से रहित, शान्त, अवर्णनीय रूप में प्रतिष्ठित कहा गया है; फिर उनसे (सृष्टि की) उत्पत्ति कैसे होती है?।।२-३।।

श्रीशङ्कर उवाच

शृणु देवि परं तत्त्वं वर्णातीताञ्च वैखरीम्।
गुणालयां गुणातीतां स्तुतिनिन्दाविवर्जिताम्।।४।।
आकाररहितां नित्यां रोगशोकादिवर्जिताम्।
पूजायोगञ्च देवेशि स्वयमुत्पत्तिकारणम्।।५।।

श्री शङ्कर कहते हैं—हे देवि! श्रेष्ठ तत्त्व को सुनो। हे देवाधीश्वरि! समस्त वर्णों से अतीत, समस्त गुणों के आश्रयस्वरूप, समस्त गुणों के ऊपर अवस्थित, स्तुति एवं निन्दा से रहित, आकार से अपरिच्छिन्न, नित्यस्वरूप, रोग-शोकादि से रहित, पूजा के योग्य, परतत्त्वरस्वरूपिणी वैखरी ही स्वयं उत्पत्ति का कारण है।।४-५।।

येन रूपेण ब्रह्माण्डा जायन्ते शृणु तच्छिवे।
आकाशाज्जायते वायुर्वायोरुत्पद्यते रविः ।।६।।
रवेरुत्पद्यते तोयं तोयादुत्पद्यते मही।
पञ्चभूतैश्च ब्रह्माण्डा भवेयुः पर्वतात्मजे ।।७।।
ब्रह्माण्डस्थापनार्थाय कूर्मपृष्ठे ह्यनन्तकः।

हे शिवे! जिस प्रकार से ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई है, उसे अब सुनो। आकाश से वायु, वायु से सूर्य, सूर्य से जल तथा जल से पृथिवी की उत्पत्ति होती है। हे पर्वतात्मजे! उक्त पञ्चभूतों से ही ब्रह्माण्डसमूह उत्पन्न होते हैं तथा ब्रह्माण्डों के रक्षार्थ कूर्मपृष्ठ पर अनन्तदेव स्थित हैं।।६-७।।

तन्मूर्ध्नि बालुकाकारा ब्रह्माण्डा बहवः स्थिताः ।।८।।
कारण्यवारिमध्ये तु कूर्मश्चरति नित्यशः।
अहमेव त्रिशूलेन पालयामि पुनः पुनः ।।९।।

उनके मस्तक पर बालू के कणों के समान आकृति से युक्त अनेक ब्रह्माण्ड स्थित हैं। कारणरूप जल में कूर्मदेव नित्य विचरण करते रहते हैं। मैं भी सर्वदा प्रति प्रलयकाल-पर्यन्त त्रिशूल से समस्त ब्रह्माण्डों का पालन करता रहता हूँ।।८-९।।

श्री चण्डिका उवाच

किमाकारन्तु ब्रह्माण्डं तन्मे ब्रूहि महेश्वर।
सृष्टिप्रकारं तन्मध्ये किमाकारं हि तत्त्ववित् ।।१०।।

श्री चण्डिका कहती हैं—हे तत्त्वज्ञ महेश्वर! यह ब्रह्माण्ड किस आकार का है तथा उसके सृष्टि का प्रकाशन कैसे होता है, इसे कृपा करके कहिये।।१०।।

श्री शङ्कर उवाच

जन्तोराकारं ब्रह्माण्डं नानाविग्रहं पार्वति।
ब्रह्माण्डं विग्रहं प्रोक्तं स्थूलक्षुद्रादिकं हि तत् ।।११।।
मेरुः पर्वतस्तन्मध्ये तथा सप्तकुलाचलाः।
मूलादिमस्तकान्तं वै सुमेरुर्नाम पर्वतः ।।१२।।
स्थितं मेरोरधोभागे द्व्यङ्गुल्याश्चोर्ध्वदेशतः।
भूर्लोकादि महेशानि सप्तस्वर्गं क्रमेण हि ।।१३।।

द्व्यङ्गुल्याः सप्तपातालास्तिष्ठन्ति परमेश्वरि ।
सत्यलोके निराकारा महाज्योतिःस्वरूपिणी ।।१४।।
माययाच्छादितात्मानं चणकाकाररूपिणी ।
हस्तपादादिरहिता चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।।१५।।
मायावल्कलसन्त्यज्या द्विधा भिन्ना यदोन्मुखी ।
शिवशक्तिविभागेन जायते सृष्टिकल्पना ।
प्रथमे जायते पुत्रो ब्रह्मसंज्ञो हि पार्वति ।।१६।।

श्री शङ्कर कहते हैं—हे पार्वति! अनेकविध शरीरमय जन्तु के आकार से युक्त यह ब्रह्माण्ड है। इसे स्थूल तथा क्षुद्रादि रूप से कहा गया है। इसमें सुमेरु पर्वत तथा सात कुलपर्वत स्थित हैं। इसमें मूल से आरम्भ करके मस्तक-पर्यन्त सुमेरु पर्वत अवस्थित है।

हे महेशानि! सुमेरु पर्वत के निम्न देश में दो अंगुल स्थान के ऊर्ध्व में भूलोक-प्रभृति सात स्वर्ग क्रम से अवस्थित हैं। नीचे दो अंगुलप्रमाण स्थान में सप्त पाताल अवस्थित हैं। सत्यलोक में आकाररहित, महाज्योतिःस्वरूपिणी, हस्त-पाद आदि आकार से रहित, चन्द्र-सूर्य-अग्निस्वरूपा, चणकरूपा, महाशक्ति महामाया स्वयं को आवृत करके विराजित हैं। जब ये मायावल्कल का भेदन करके द्वैतरूपा होकर प्रकाशित होती हैं तभी शिव तथा शक्तिरूप विभाग घटित होता है और उसी के पश्चात् सृष्टि की कल्पना होती है। हे पार्वति! उसी समय ब्रह्मा नामक प्रथम पुत्र का प्रादुर्भाव होता है।।११-१६।।

श्रीकालिका उवाच

शृणु पुत्र महावीर विवाहं कुरु यत्नतः ।
एतच्छ्रुत्वा ततो ब्रह्मा उवाच सादरं प्रिये ।।१७।।
त्वां विना जननी नास्ति शक्तिं मे देहि सुन्दरीम् ।
तच्छ्रुत्वा जगतां माता स्वदेहान्मोहिनीं ददौ ।।१८।।
द्वितीया सा महाविद्या सावित्री परमा कला ।
अस्याः सङ्गं समासाद्य वेदविस्तारणं कुरु ।।१९।।
अनायासं सृष्टिकर्त्ता भव त्वं महिमण्डले ।

श्री कालिका कहती हैं—हे महावीर पुत्र! सुनो! तुम यत्नपूर्वक विवाह करो। यह सुनकर ब्रह्मा कहते हैं—आपके अतिरिक्त कोई भी सृजनकारी शक्ति नहीं है। अत: आप मुझे सुन्दरी शक्ति प्रदान कीजिये। ये मोहिनी शक्ति ही द्वितीया महाविद्या परमा कला सावित्री नाम से ख्यात हैं। साथ ही श्री कालिका ने यह भी कहा कि इस शक्ति

का संग-लाभ करके तुम वेदों का विस्तार करो तथा अनायास ही क्षितिमण्डल में सृष्टि-कर्त्ता हो जाओ।।१७-१९।।

द्वितीये जायते पुत्रो विष्णुः सत्त्वगुणाश्रयः ॥२०॥
शृणु पुत्र महावीर विवाहं कुरु यत्नतः ।
तव दर्शनमात्रेण निष्कामो जायते पुमान् ॥२१॥

तदनन्तर द्वितीय पुत्र सत्त्वगुणाश्रय विष्णु का आविर्भाव हो गया। देवी ने उनसे कहा—हे महावीर पुत्र! तुम यत्नपूर्वक विवाह करो। तुम्हारे दर्शनमात्र से ही पुरुष निष्काम हो जाते हैं।।२०-२१।।

कथं करोमि हे मातर्मोहिनीं देहि मे शिवे ।
देहाच्छक्तिञ्च निर्गत्य ददौ तस्मै च कालिका ॥२२॥
महाविद्यां श्रीविद्यां पारमेश्वरीम् तामाश्रित्य ।
वैष्णवीं तां महाविष्णुः पालयत्यखिलं जगत् ॥२३॥

विष्णु कहते हैं—हे जननी शिवे! कैसे विवाह करूँगा? आप मुझे मोहिनी शक्ति प्रदान करें। तब जगज्जननी काली ने अपने देह से शक्ति को निर्गत करके उन्हें प्रदान किया। यही हैं—विष्णुशक्ति परमेश्वरी महाविद्या श्रीविद्या। इनका आश्रय लेकर ही महाविष्णु अखिल जगत् का पालन करते हैं।।२२-२३।।

तृतीये जायते पुत्रो महायोगी सदाशिवः ।
तं दृष्ट्वा सा महाकाली तुष्टियुक्ताऽभवन्मुदा ॥२४॥

तृतीय पुत्र महायोगी सदाशिव का आविर्भाव होने पर उन्हें देख कर महाकाली अतीव सन्तुष्ट तथा हर्षित हुईं।।२४।।

शृणु पुत्र महायोगिन्! मद्वाक्यं हृदये कुरु ।
त्वां विना पुरुषः को वा मां विना कापि मोहिनी ।
अतस्त्वं परमानन्द विवाहं कुरु मे शिव ॥२५॥

उन्होंने इस प्रकार कहा—हे महायोगी पुत्र! मेरी बात को सुनकर उसे अपने हृदय में धारण करो। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष नहीं है एवं मेरे अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी शक्ति नहीं है। अत एव हे परमानन्द शिव! तुम मुझसे विवाह करो।।२५।।

श्रीशिव उवाच

यदुक्तं मयि हे मातस्त्वां विना नास्ति मोहिनी ।
सत्यमेतज्जगन्मातर्मां विना पुरुषो न च ॥२६॥

अस्मिन् देहे संस्थिते च न करोमि विवाहकम्।
कुरु देहान्तरं मातः करुणा यदि वर्त्तते॥२७॥
तत्क्षणे सा महाकाली ददौ भुवनसुन्दरीम्।
आदिभूता यथा काली तथा भुवनसुन्दरी॥२८॥
तामाश्रित्य महायोगी संहरत्यखिलं जगत्।

शिव कहते हैं—हे जननी! आपने जो यह कहा कि आपके अतिरिक्त कोई शक्ति नहीं है तथा मेरे अतिरिक्त कोई पुरुष नहीं है, यह यथार्थ है; तथापि (आपकी) इस शरीर के रहते मैं यह विवाह नहीं कर सकता। अत: हे जननी! यदि आपकी करुणा मेरे प्रति है तब शरीरान्तर की व्यवस्था कीजिये। यह सुनते ही महाकाली ने महासुन्दरी महाशक्ति का प्रादुर्भाव करके उन्हें प्रदान कर दिया। आदिभूता महाकाली जिस प्रकार की हैं, भुवनसुन्दरी महाशक्ति भी उसी प्रकार की हैं। उनका आश्रय ग्रहण करके सदाशिव समस्त ब्रह्माण्डों का संहार करते हैं।।२६-२८।।

शम्भुरष्टविभागश्च शक्तिश्चाष्टविधा भवेत्।
कालिकाद्या महाविद्या ह्यनेन परमेश्वरि॥२९॥

शिव के आठ विभाग हैं तथा शक्ति के भी आठ विभाग हैं। हे परमेश्वरि! इसी कारण कालिका-प्रभृति आठ महाविद्यायें प्रसिद्ध हैं।।२९।।

इति ते कथितं कान्ते यथा ब्रह्म निरूपणम्।
गोपनीयं प्रयत्नेन विद्योत्पत्तिर्यथा प्रिये॥३०॥

इति श्रीनिवार्णतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे श्रीशङ्करचण्डिकासंवादे
परब्रह्मनिरूपणं नाम प्रथमः पटलः

हे प्रिये! जिस तरह से ब्रह्मनिरूपण हुआ था, वह तुम्हें बतलाया। हे प्रिये! इसे ही विद्योत्पत्ति कहते हैं। इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये।।३०।।

निर्वाण तन्त्र का प्रथमपटल समाप्त

द्वितीयः पटलः

श्रीचण्डिका उवाच

त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं नाथ परब्रह्मनिरूपणम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्षितौ सृष्टिर्यथा भवेत्॥१॥

श्री चण्डिका कहती हैं—हे नाथ! आपकी कृपा से परब्रह्मनिरूपण तत्त्व को मैंने सुना। अब जिस प्रकार से सृष्टि होती है, उसे सुनने की इच्छा है।।१।।

श्रशिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यथा सृष्टिः प्रजायते।
सत्यलोके महाकाली महारुद्रेण सम्पुटा॥२॥
चणकाकृतिविस्तारा चन्द्रसूर्यादिरूपिका।
अनादिरूपसंयुक्ता तदंशा जीवसंज्ञकाः॥३॥

श्रशिव कहते हैं—हे देवि! जिस प्रकार सृष्टि होती है, उसे मैं कहता हूँ; तुम श्रवण करो। महारुद्र के साथ संयुक्त होकर चन्द्र सूर्य के समान तेज से संयुक्त होकर चणक (चना) के समान आकार वाली महाकाली सत्यलोक में स्थित हैं। उनका ही अंश अनादि जीव कहलाता है।।२-३।।

ज्वलदग्नेर्यथा देवि स्फुरन्ति विस्फुलिङ्गकाः।
तस्याश्च्युतं परं बिन्दु यदा भूमौ पतत्यपि॥४॥
तदैव सहसा देवि! शक्त्या युक्तो भवत्यपि।
स्थावरादिषु कीटेषु पशुपक्षिषु शैलजे।
चतुरशीतिलक्षं वै जन्म चाप्नोति सोऽव्ययः॥५॥

प्रज्वलित अग्नि से जैसे स्फुलिङ्ग निर्गत होता रहता है, वैसे ही महाकाली से परबिन्दु च्युत होकर पृथिवी पर पतित होता रहता है। हे पर्वतनन्दिनि! वे अव्यय परमपुरुष ही शक्ति से युक्त होकर स्थावरादि में, कीट-पशु-पक्षी-प्रभृति में चौरासी लाख योनियों में जन्म को प्राप्त होते हैं।।४-५।।

ततो लभेत् परेशानि मानुषीं दुर्लभां तनुम्।
यतो मानुषदेहस्तु धर्माधर्माधिपश्च सः॥६॥

ततोऽपि लभते जन्म पुनर्मृत्युमवाप्नुयात् ।
जायन्ते च म्रियन्ते च कर्मपाशनियन्त्रिताः ।
चतुरशीतिलक्षेषु नानायोनिषु शैलजे ॥७॥

हे पर्वतनन्दिनि! इसके पश्चात् वे दुर्लभ मनुष्य शरीर को प्राप्त करते हैं और वे इस मनुष्यशरीर को प्राप्त करके धर्म-अधर्म के अधिपति हो जाते हैं। हे परेशानि! तब उन्हें जन्म तथा मृत्यु की प्राप्ति होती है। कर्मपाश में आबद्ध होकर जीवगण इन विभिन्न योनियों में पुनः पुनः जन्म-मृत्यु का परिग्रह करते रहते हैं।।६-७।।

श्रीचण्डिका उवाच

कथं वा लभते जन्म कथं मृत्युर्भवेत् प्रभो ।
तत्प्रकारं महादेव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥८॥

श्री चण्डिका कहती हैं—हे प्रभो महादेव! किस प्रकार से जन्मलाभ तथा मृत्यु प्राप्त होती है, इसे आपसे यथायथरूपेण सुनना चाहती हूँ।।८।।

श्रीशङ्कर उवाच

इह यत् क्रियते कर्म तत् परत्रोपभुज्यते ।
जीवस्तृणजलौकेव देहाद्देहान्तरं व्रजेत् ॥९॥
सम्प्राप्य चोत्तमं देहं देहं त्यजति पूर्वकम् ।
इति श्रुत्वा च सा चण्डी प्रपच्छ परमेश्वरम् ॥१०॥

श्री शंकर कहते हैं—इस लोक में जिस कर्म का अनुष्ठान किया जाता है, परलोक में उसी का फलभोग करना पड़ता है। जीव तृण-जलौका के समान एक शरीर का त्याग करके अन्य शरीर में प्रविष्ट होता है। उत्तम शरीर को प्राप्त करके पह अपने पूर्वशरीर का त्याग कर देता है। यह सुन कर देवी ने परमेश्वर से पूछा।।९-१०।।

श्रीचण्डिका उवाच

प्राप्तश्चोत्तरदेहन्तु पिण्डदानादिकं कथम् ॥११॥

श्री चण्डिका कहती हैं—दूसरा शरीर प्राप्त हो जाने के उपरान्त पूर्व शरीर के पिण्डदानादि कार्य कैसे सम्भव होते हैं।।११।।

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मायादेहं तथैव हि ।
मायादेहं परेशानि वायुरूपेण चान्यथा ॥१२॥
वायुरूपो यतो देह आकाशस्थो निराश्रयः ।
ततश्च पिण्डदानेन वायुः स्थिरतरो भवेत् ॥१३॥

श्रीशिव कहते हैं—हे देवि! मैं मायाशरीर की बात कर रहा हूँ; सुनो! हे परेशानि! पूर्व मायाशरीर के त्यागकाल में ही वायुरूप से अन्य एक मायाशरीर उत्पन्न हो जाता है। जब वायुरूप शरीर आकाश में निराश्रय रूप विद्यमान रहता है, तब पिण्डदान से उस वायुरूप शरीर में स्थिरता आती है।।१२-१३।।

प्रथमे मस्तकं देवि जायते च क्रमावधि।
ततो यमपुरं गत्वा धर्माधर्मादिकञ्च यत् ॥१४॥
तिद्भुक्त्वा चापरं किञ्चिद्यदा कर्म न विद्यते।
यदाज्ञया तदा जीवः प्रययौ ब्रह्माशसनम् ॥१५॥

पहले पिण्डदान से मस्तक तथा क्रमशः सभी अवयव निर्मित होते हैं। तदनन्तर यमपुरी में गमन करके धर्म तथा अधर्मजन्य फल का भोग करने के पश्चात् अपर जन्म में कोई कर्म शेष नहीं रहता। तब अपर जन्म में ब्रह्मशासन प्राप्त होता है।।१४-१५।।

तस्मात् कर्मानुसारेण यदि स्याद् दुर्लभां तनुम्।
महाविद्या भाग्यवशाद् यदि प्राप्नोति सद्गुरुम् ॥१६॥
तत्त्वज्ञानं महेशानि यदि भाग्यवशाल्लभेत्।
तदैव परमं मोक्षं यावद् ब्रह्माण्डं तिष्ठति ॥१७॥

तदनन्तर हे महेशानि! यदि भाग्य से दुर्लभ मनुष्यशरीर प्राप्त होता है, भाग्यवशात् यदि सद्गुरु से महाविद्या की प्राप्ति होती है, यदि भाग्य से तत्त्वज्ञान मिल जाता है, तब जबतक ब्रह्माण्ड स्थित रहता है, तब तक के लिये मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

ब्राह्मणस्य महामोक्षं सायुज्यं क्षत्रियस्य च।
सारुप्यञ्चोरुजातस्य शूद्रस्य सहलौकिकम् ॥१८॥
महाविद्याप्रसादेन पुनरागमनं न हि।
बृहद् ब्रह्माण्डनाशे तु सर्वमोक्षं यदा शिवे।
तदा सर्वस्य निर्वाणं भवत्येव न संशयः ॥१९॥

महाविद्या के प्रभाव से ब्राह्मण को महामोक्ष, क्षत्रिय को सायुज्य, वैश्य को सारूप्य तथा शूद्र को सालोक्य मुक्ति की प्राप्ति होती है और उसका पुनरागमन नहीं होता। हे शिवे! बृहद् ब्रह्माण्ड का नाश होने पर सभी मुक्त हो जाते हैं, सभी का निर्वाण हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१८-१९।।

श्रीचण्डिका उवाच

बृहद् ब्रह्माण्डबाह्ये तु किं पुनः परमेश्वर।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥२०॥

श्री चण्डिका कहती हैं—हे परमेश्वर! बृहद् ब्रह्माण्ड के बाहर क्या है? यदि आपका प्रेम मुझ पर है, तब वह सुनना चाहती हूँ।।२०।।

श्रीशिव उवाच

ब्रह्माण्डस्य बाह्यदेहे ब्रह्माण्डा बहवः स्थिताः ।
अनन्तस्य प्रमाणन्तु किं वक्तुं शक्यते मया ॥
स एव निर्मितं सर्वं सैव सर्वं महेश्वरि ॥२१॥

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे श्रीशङ्करचण्डिका-
संवादे द्वितीयः पटलः

श्री शिव कहते हैं—ब्रह्माण्ड के बाहरी देश में अनेक ब्रह्माण्ड स्थित हैं। हे महेश्वरि! अनन्त का प्रमाण बतलाने में मैं समर्थ नहीं हूँ। उन्होंने ही सबका निर्माण किया है और वे ही सब कुछ हैं।।२१।।

निर्वाण तन्त्र का द्वितीय पटल समाप्त

तृतीयः पटलः

श्रीशिव उवाच

प्रकृत्या जायते पुंसां प्रकृत्या सृज्यते जगत्।
तोयात्तु बुद्बुदं देवि यथा तोये विलीयते।
प्रकृत्या जायते सर्वं पुनस्तस्यां प्रलीयते॥१॥
तस्मात् प्रकृतियोगेन जायते नान्यथा क्वचित्।
ब्रह्मा विष्णुः शिवो देवि प्रकृत्या जायते ध्रुवम्।
तथा प्रलयकाले तु प्रकृत्या लुप्यते पुनः॥२॥

श्रीशिव कहते हैं—पुरुष के सहयोग से प्रकृतिकर्तृक जन्म के साथ ही प्रकृतिकर्तृक जगत् की सृष्टि होती है। जैसे जल से बुलबुले उत्पन्न होकर पुन: जल में ही विलीन हो जाते हैं, वैसे ही प्रकृति से उत्पन्न होकर सब कुछ पुन: उसी में लीन हो जाता है। अत: प्रकृति से ही उत्पत्ति होती है। इसके विना कहीं कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव भी प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं, यह निश्चित है। इसी प्रकार प्रलय में ये सभी पुन: उस प्रकृति में ही लीन भी हो जाते हैं।।१-२।।

शाक्ता एव द्विजाः सर्वे न शैवा न च वैष्णवाः।
उपासन्ते यतो देवीं गायत्रीं परमाक्षरीम्॥३॥

शैव अथवा वैष्णव द्विज नहीं होते; अपितु शाक्त ही द्विज होते हैं; क्योंकि शाक्त ही परमाक्षरी गायत्री की उपासना करते हैं।।३।।

गायत्रीं शृणु चार्वङ्गि चतुर्वेदप्रपूजिताम्।
वेदमातेति विख्यातां त्रिवर्गफलदायिनीम्॥४॥
हालाहलं समुद्धृत्य नाभ्यक्षरं समुद्धरेत्।
वामकर्णसमायुक्तं पुनर्नाभिं समुद्धरेत्॥५॥
कर्णयुक्तं मूर्ध्नि रेफं ततश्च सुरवन्दिते।
वारुणं रसनायुक्तं चन्द्रबीजं ततः परम्॥६॥
लान्तयुक्तं सर्गयुतं चैवं व्याहृतिमुद्धरेत्।

हे सुरन्दरावयवे! वेदमाता नाम से विख्यात, धर्म-अर्थ एवं काम को प्रदान करने वाली, चारो वेदों द्वारा पूजित गायत्री के स्वरूप का अब श्रवण करो।

हालाहल (ॐ), नाभ्यक्षर (भ), वामकर्ण (ॐ), नाभि (भ), कर्णयुक्त (उ), मूर्ध्नि (रेफ), वारुण (व), रसना (:), चन्द्रबीज (स), लान्त (व), सर्गयुत (:); इससे मन्त्रोद्धार होता है—ॐ भूर्भुवः स्वः।।४-६।।

तत्पदञ्च समुद्धृत्य सवितुस्तदनन्तरम् ॥७॥
वरेण्यमिति चोच्चार्य भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् प्रणवं तदनन्तरम् ॥८॥

तदनन्तर इसमें अब 'तत् सवितुः वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' का योग होता है और उसके पश्चात् प्रणव लगाया जाता है। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ।।७-८।।

इति जप्त्वा महेशानि साक्षान्नारायणो भवेत् ।
धिनयोर्मध्यभागे च यकारद्वयमेव च ॥९॥
अत एव महेशानि अनन्तश्रुतिरेव च ।
इति जप्त्वा महेशानि मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥१०॥
अन्त्ययकारयोः स्थाने जकार इति यः पठेत् ।
स चाण्डाल इति ख्यातो ब्रह्महत्या दिने दिने ॥११॥

हे महेशानि! इस मन्त्र के जप से साधक साक्षात् नारायण हो जाता है। 'धि' तथा 'न' के मध्य में दो यकार हैं। हे महेशानि! इसी कारण यह मन्त्र अनन्त श्रुतिरूप है। इस मन्त्र के जप से सद्यः मुक्ति प्राप्त होती है।

जो कोई अन्त्य 'य' के स्थान पर 'ज' का उच्चारण करते हैं, वे चाण्डाल होकर नित्य ब्रह्महत्यारूपी पाप से ग्रसित होते हैं।।९-१०।।

अत एव महेशानि तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
सावित्री परमा विद्या त्रैलोक्येषु सुदुर्लभा ॥१२॥
अस्या ग्रहणमात्रेण भूब्रह्मा नात्र संशयः ॥१३॥

हे महेशानि! इसे तुम्हारे स्नेह के कारण मैंने कहा है। यह श्रेष्ठ सावित्री विद्या त्रैलोक्य में अत्यन्त दुर्लभ है। इसके ग्रहणमात्र से ही पृथिवी पर ब्रह्मत्व प्राप्त हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१२-१३।।

षड‌ङ्गन्यासमन्त्रं यत्तच्छृणुष्व प्रियंवदे ।
प्रणवद्वयञ्च हृत्पद्मे भूःकारं शीर्षदेशके ॥१४॥
भुवः शिखायां स्वःकारं कवचे तु न्यसेत्सुधीः ।

नेत्रद्वयोर्भूर्भुवः स्वः स्वःकारं करयुग्मके।
नमः स्वाहा वषट् कुर्याद्वौषट् फट् क्रमतो न्यसेत् ॥१५॥

हे प्रियंवदे! यह गायत्री मन्त्र जिस प्रकार षड़ङ्ग होता है, उसे अब सुनो। हृदयादि में यथाक्रम से ॐ ॐ नमः, मस्तक में भूः स्वाहा, शिखा में भुवः वषट्, कवच में स्वः हुं, नेत्रद्वय में भूर्भुवः स्वः वौषट्, करद्वय में स्वः फट् से न्यास करना चाहिये।।१४-१५।।

ध्यानं शृणु वरारोहे यथा ध्यात्वा यजेन्नरः।
श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा ॥१६॥
श्वेतैर्विलेपनैः पुष्पैरलङ्कारैश्च भूषिता।
आदित्यमण्डलान्तःस्था ब्रह्मलोकगतान्तरा।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता तथा ॥१७॥

हे वरारोहे! मनुष्यों को जिस प्रकार से इसका ध्यान करना चाहिये, उसे अब कहता हूँ। देवी श्वेतवर्णा, पट्टवस्त्र धारण की हुई, श्वेत विलेपन लगाई हुई तथा श्वेत पुष्प एवं श्वेत अलंकार से भूषित हैं। वे सूर्यमण्डल के मध्य में स्थित, ब्रह्मलोक में गमन करने वाली, अक्षसूत्रधारिणी एवं पद्मासन पर विराजमान रहने वाली हैं।

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतसि धामनामासि।
प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥१८॥

आप तेजस्वरूपा, निर्मल वीर्यस्वरूपा, अमृतस्वरूपा, सबके लिये आश्रयस्वरूपा, देवताओं की प्रिया, अनभिभवनीया तथा देवपूजा की आधारस्वरूपा हैं।।१८।।

गायत्री चैकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपि।
नमस्ते तुरीयाय दर्शनाय पदाय परोरजसे ॥१९॥

आप एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी तथा चतुष्पदी भी हैं। आप तुरीयस्वरूपा, दर्शन के योग्य श्रेष्ठ स्थान तथा रजोगुण से परे हैं।।१९।।

एवं यजेत तां देवीं गायत्रीं परमाक्षरीम्।
पुनर्ध्यात्वा यन्त्रपीठे पुष्पं दद्याद्वरानने ॥२०॥
आदौ त्रिकोणं विन्यस्य षट्कोणं तद्बहिर्न्यसेत्।
वृत्तं चाष्टदलं पद्मं तद्बहिश्चतुरस्रकम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं सावित्रीयन्त्रमीरितम् ॥२१॥

हे वरानने! परमाक्षरी इन गायत्री देवी की इस प्रकार से पूजा करनी चाहिये। पुनः ध्यान करने के उपरान्त यन्त्रपीठ पर पुष्प प्रदान करना चाहिये। यन्त्र-निर्माण के क्रम

में पहले त्रिकोण बनाने के बाद उसके बाहर षट्कोण, तदनन्तर वृत्त, तदनन्तर अष्टदल कमल, तदनन्तर चतुष्कोण का निर्माणकरके चारो दिशाओं में चार द्वार बनाना चाहिये। यही सावित्री यन्त्र कहा गया है।।२०-२१।।

जीवन्यासादिकं कृत्वा पूजयेत्तां त्रिवर्गदाम्।
हालाहलादिकं मन्त्रं समस्तं परमेश्वरि ॥२२॥
समुच्चार्य वदेत् पाद्यं सावित्रीं ङेयुतां ततः।
त्यागात्मकं पदं पश्चात् यथाविभवविस्तरैः ॥२३॥
पूजयेद् बहुयत्नेन चान्यथा ब्राह्मणाच्च्युतः।
द्रव्याभावे वरारोहे पाद्याद्यैरुदकात्मकैः।
पूजयित्वा जपेद् देवीं गायत्रीं परमाक्षरीम् ॥२४॥

उस यन्त्र में जीवन्यासादि करने के उपरान्त त्रिवर्ग को देने वाली गायत्री की पूजा करनी चाहिये। एतदर्थ हे परमेश्वरि! पहले गायत्री मन्त्र का उच्चारणकरने के बाद पाद्यादि द्रव्यों का उल्लेख करते हुये 'सावित्र्यै' कहने के पश्चात् त्यागार्थक 'नमः, स्वाहा' प्रभृति पदों को योजित करना चाहिये (अर्थात् ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ एतत् पाद्यं सावित्र्यै नमः)। इस प्रकार से अपने सामर्थ्य के अनुरूप यत्नपूर्वक देवीपूजन करना चाहिये; अन्यथा साधक ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है। हे वरारोहे! द्रव्याभाव की स्थिति में उदकात्मक पाद्यादि से ही पूजा करके परमाक्षरी गायत्री का जप करना चाहिये।।२२-२४।।

दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुरा कृतम्।
त्रियुगन्तु सहस्रेण गायत्री हन्ति पातकम् ॥२५॥

गायत्री मन्त्र के दश बार जप से इस जन्म का पाप, एक सौ बार जप से पूर्व जन्म का पाप एवं एक हजार बार जप से त्रियुगकृत पाप नष्ट हो जाता है।।२५।।

महेशवदनोत्पन्ना विष्णोर्हृदयसंस्थिता।
ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथेच्छया ॥२६॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य देव्या वामकरे बुधः।
समर्पयेदपि फलं ततः स्तोत्रादिकं पठेत् ॥२७॥
विधिवल्लक्षजापेन पुरश्चरणमीरितम्।
तद्दशांशं हुनेत् पश्चात् पुरश्चरणसिद्धये ॥२८॥

हे देवि! आप महेश के मुख से उद्भूत हैं, विष्णु के हृदय में स्थित हैं एवं ब्रह्मा द्वारा सम्यक् रूप से अनुज्ञा-प्राप्त हैं; अतः आप अपनी इच्छानुसार कहीं भी जा सकती

हैं। विद्वान् व्यक्ति को इस मन्त्र का उच्चारण करके देवी के बाँयें हाथ में जपफल का समर्पण करना चाहिये। इसके अनन्तर स्तोत्र आदि का पाठ करना चाहिये। इनके मन्त्र का विधिपूर्वक एक लाख जप करने से पुरश्चरण सम्पन्न होता है। तदनन्तर उस पुरश्चरण की सिद्धि के लिये कृत जप का दशांश अर्थात् दश हजार हवन करना चाहिये।।२६-२८।।

होमस्य तद्दशांशेन तर्पणं तदनन्तरम्।
तर्पणस्य दशांशेन अभिषेकं ततः परम्।।२९।।
अभिषेकदशांशैकं कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
ततः सिद्धा भवेद् देवी त्रिवर्गफलसाधिनी।
माहात्म्यञ्चास्य मन्त्रस्य चतुर्वेदेन भाषितम्।।३०।।

होम करने के पश्चात् उस होम के दशांश अर्थात् एक हजार तर्पण करने के उपरान्त कृत तर्पण के दशांश अर्थात् एक सौ अभिषेक करने के बाद अभिषेक के दशांश अर्थात् दश ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। ऐसा करने से धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्ग फल को प्रदान करने वाली देवी सिद्ध हो जाती है। इस गायत्री मन्त्र की महिमा का चारो वेदों में वर्णन कियागया है।।।२९-३०।।

आपोमार्जनमन्त्रस्य प्रकारं शृणु यत्नतः।
भूमौ शिरसि आकाशे आकाशे भुवि मस्तके।।३१।।
मूर्ध्नि भूमौ तथाकाशे यजुर्वेदे सुरेश्वरि।
सामाथर्वे त्विदं देवि ऋग्वेदं शृणु शैलजे।।३२।।

हे देवी सुरेश्वरि! अब आपोमार्जन मन्त्र के प्रकार को कहता हूँ; इसे यत्नपूर्वक श्रवण करो। यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद के मतानुसार भूमि में, मस्तक में, आकाश में, आकाश से पुनः भूमि में, पुनः मस्तक में, पुनः मस्तक से भूमि में एवं पुनः आकाश में इस क्रम का आश्रयण करना चाहिये। हे शैलजे! अब ऋग्वेद में कथित प्रकार का श्रवण करो।।३१-३२।।

शून्ये शिरसि चावन्यां भूमौ शून्ये शिरे तथा।
भूमौ शून्ये तथा मूर्ध्नि चापोमार्जनमाचरेत्।।३३।।

ऋग्वेद के अनुसार आकाश से मस्तक में, मस्तक से भूमि में, भूमि से आकाश में, पुनः वहाँ से मस्तक में—इस क्रम से आपोमार्जन करना चाहिये।।३३।।

आपोहिष्ठेति मन्त्रेण अष्टाक्षरपदेन तु।
मार्जनं तत्क्रमेणैव सर्वपापप्रणाशनम्।।३४।।

व्यतिक्रमेण चार्वङ्गि ब्रह्महत्या पदे पदे।
अत एव क्रमं सर्वं तव स्नेहात् प्रकाशितम्।
स्तुतिञ्च कवचं देवि पठित्वा प्रणमेत् सुधीः ॥३५॥

'आपोहिष्ठा' मन्त्र से तथा अष्टाक्षर पद से उक्त क्रम से मार्जन करनें पर मनुष्य के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। हे सुन्दर अंगों वाली देवि! इसके व्यतिक्रम से प्रत्येक पद पर ब्रह्महत्या का पाप लगता है। इसीलिये तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण मैंने उक्त समस्त क्रम को प्रकाशित किया है। हे देवि! सुधी साधक को पूजन के अन्त में स्तव एवं कवच का पाठ करके देवी को प्रणाम करना चाहिये।।३४-३५।।

श्रीदेव्युवाच

तुरीयधामे यो देवः परमात्मा स एव हि।
शिरःपद्मे स्थिते बाह्ये नमस्कारः कथं भवेत् ॥३६॥

देवी कहती हैं—तुरीय धाम में जो देवता स्थित हैं, वे ही परमात्मा हैं। अतः उनके शिर:पद्म में अवस्थान करने से बाह्य रूप से नमस्कार कैसे सम्भव है।।३६।।

श्रीशिव उवाच

शिरःपद्मे महादेवस्तथैव परमो गुरुः।
तत्समो नास्ति देवेशि पूज्यो हि भुवनत्रये ॥३७॥
तद्रूपं चिन्तयेन्मन्त्री बाह्ये गुरुचतुष्टयम्।
तदंशा भावसम्भूता ये चान्ये गुरवो जनाः ॥३८॥
तदैव ब्राह्मणाः सर्वे चांशावतारसंस्थिताः।
यदैव बाह्ये चैतांश्च प्रत्यक्षे भावयेत्तदा ॥३९॥

श्रीशिव कहते हैं—शिर:पद्म में महादेवरूप परमगुरु स्थित हैं। हे देवेशि! त्रिभुवन में उनके समान पूज्य कुछ भी दूसरा नहीं हैं। इस प्रकार से मन्त्रवान साधक को बाहर में गुरुचतुष्टय (गुरु-परमगुरु-परापरगुरु-परमेष्ठिगुरु) का चिन्तन करना चाहिये; साथ ही उनके अंशरूप में अन्यान्य गुरुजनों का तथा अंशावताररूप से समस्त ब्राह्मणों का चिन्तन करना चाहिये।।३७-३९।।

सहस्रारे महापद्मे तथा चिन्तां विवर्जयेत्।
प्रत्यक्षे दर्शने देवि बाह्ये तद्ब्रह्म चिन्तयेत् ॥४०॥

तदनन्तर सहस्रदल कमल में चिन्ता का त्याग कर देना चाहिये। हे देवि! बाहर प्रत्यक्ष रूप से ब्रह्म का चिन्तन करना चाहिये।।४०।।

नमस्कारादिकं देवि कुर्यात् साधकसत्तमः।

एभ्यो दर्शनमात्रेण नमस्कारादिकञ्चरेत्।
न कुर्याद्यदि मोहेन स भवेदापदाश्रयः ।।४१।।

हे देवि! इनको देखते ही साधकश्रेष्ठ को नमस्कारादि का अनुष्ठान करना चाहिये। यदि कोई साधक मोहवश प्रणाम नहीं करता है तोउसे अनेकशः विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।।४१।।

ब्राह्मणादीन् समालोक्य ब्रह्मचारी यतित्रयम्।
दृष्टिमात्रेण गिरिजे प्रणमेद्दण्डवद् भुवि ।।४२।।
महापातकयुक्तोऽपि मुक्तो भवति नान्यथा।
न कुर्याद्यदि मोहेन महापातकवान् भवेत् ।।४३।।

हे गिरिनन्दिनि! ब्राह्मण, ब्रह्मचारी एवं यति बर्थात् संन्यासी का दर्शन होते ही उन्हें भूमि पर दण्डवत् होकर प्रणाम करना चाहिये।ऐसा करने से महान् पातकी भी अपने पाप से मुक्त हो जाता है। मोहवश यदि कोई उपर्युक्त रूप से दण्डवत् प्रणाम नहीं करता है तो वह व्यक्ति महापातक से युक्त हो जाता है।।४२-४३।।

रक्तवस्त्रं समालोक्य तथा भस्माङ्गभूषितम्।
दण्डहस्तं त्रिशूलञ्च दृष्ट्वा प्रदक्षिणत्रयम्।
प्रकुर्यात् साधकश्रेष्ठश्चान्यथा पातकी भवेत् ।।४४।।

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमे श्रीशङ्करचण्डिका-
संवादे तृतीयः पटलः

श्रेष्ठ साधक को लाल वस्त्र धारण करने वाले, अंगों को भस्म से विभूषित करने वाले, हाथ में दण्ड एवं त्रिशूल धारण करने वाले को देखकर उसकी तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिये; ऐसा न करने से व्यक्ति पापयुक्त होता है।।४४।।

निर्वाणतन्त्र का तृतीय पटल समाप्त

चतुर्थः पटलः

श्रीचण्डिका उवाच

संन्यासं कीदृशो नाथ अवधूतश्च कीदृशः ।
कीदृशो वा ब्रह्मचारी गृहस्थो वाथ कीदृशः ॥१॥

श्रीचण्डिका भगवान् शिव से पूछती कहती हैं—हे नाथ! संन्यास किस प्रकार का होता है एवं अवधूत, ब्रह्मचारी अथवा गृहस्थ किस प्रकार के होते हैं?।।१।।

श्रीशिव उवाच

दिव्यप्रकाशिकां मूर्त्तिं चिन्तयेद् दण्डधारिणीम् ।
वीरस्य मूर्त्तिं देवेशि सदा भस्माङ्गभूषणाम् ॥२॥
कौलिकस्य गृहस्थस्य मूर्त्तिं तद्ब्रह्मचारिणः॥३॥

श्रीशिव कहते हैं—दण्डधारी संन्यासी की दिव्य प्रकाशमूर्त्ति का चिन्तन करना चाहिये। हे देवेशि! वीर अवधूत की भस्मांग-भूषित मूर्त्ति का चिन्तन करना चाहिये। कौलिक गृहस्थ तथा ब्रह्मचारी की भी ऐसी ही मूर्त्ति (आकृति) का चिन्तन करना चाहिये।।२-३।।

गृहस्थस्य दिव्यमूर्त्तिं चन्दनादिविभूषिताम् ।
सर्वेषां पितृरूपोऽसौ गृहस्थः साधुरूपकः ॥४॥

गृहस्थ को चन्दनादि से विभूषित दिव्य मूर्त्तिरूप जानना चाहिये। यह साधुरूपी गृहस्थ सभी आश्रम तथा वर्ण का पितास्वरूप होता है।।४।।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि बृहद् ब्रह्माण्डलक्षणम् ।
मेरुपर्वततन्मध्ये सर्वदेवाश्रयः प्रिये ॥५॥
महाधीरा नदी तत्र मध्यदेशे सदा स्थिता ।
सुमेरोश्चोर्ध्वदेशे तु सत्यलोकं वरानने ॥६॥
अधोभागे महेशानि प्रतिष्ठति रसातलम् ।

हे देवि! सुनो; अब मैं बृहद् ब्रह्माण्ड का स्वरूप कहता हूँ। हे प्रिये! उसमें सभी देवता के आश्रयरूप सुमेरु पर्वत की स्थिति है। वहाँ पर्वत के मध्य भाग में महाधीरा नदी प्रवहमान है। हे वरानने! उस सुमेरु के ऊर्ध्व भाग में सत्यलोक एवं अधोभाग में पाताल लोक अवस्थित है।।५-६।।

एवं क्रमे मेरुमध्ये भुवनानि चतुर्दश।
पातालसप्तकञ्चोर्ध्वे ब्रह्मपद्मं महेश्वरि ।।७।।

हे महेश्वरि! इसी क्रम से उस मेरु के मध्य में चौदहो भुवन अवस्थित हैं। वहीं सप्त पाताल भी हैं एवं उनसे ऊपर ब्रह्मपद्म अवस्थित है।।७।।

अधोवक्त्रं हि तत् पद्मं धरामध्ये चतुर्दलम्।
पद्ममध्ये बीजकोषे क्षितिचक्रं मनोहरम् ।।८।।
वलयाकाररूपेण समुद्राः सप्त संस्थिताः।
जम्बुद्वीपं मध्यदेशे चतुष्कोणं मनोहरम् ।।९।।

चार दलों वाला वह कमल अधोमुख रूप में धरामध्य में अवस्थित है। उस कमल के मध्य में बीजकोष में मनोहर क्षितिचक्र शोभित है। वहाँ वलयाकार रूप से सातो समुद्र विद्यमान हैं एवं उनके मध्य में चौकोर आकृति वाला मनोहर जम्बूद्वीप विद्यमान है।।८-९।।

त्रिकोणं मदनागारं कन्दर्पश्चाधिदेवता।
ऐन्द्ररूपं हि लं बीजं गजेन्द्रवाहनं शिवे ।।१०।।
त्रिकोणे मदनागारे लिङ्गरूपी महेश्वरः।
मायाशक्तिर्महेशानि भुजगाकाररूपिणी ।।११।।

मदन का गृहस्वरूप त्रिकोण है, जिसके अधिदेवता कन्दर्प (कामदेव) हैं। हे शिवे! वहाँ इन्द्रस्वरूप 'लं' बीज तथा गजेन्द्र वाहन स्थित है।

हे महेशानि! त्रिकोणरूप मदनालय में लिंगरूपी महेश्वर स्थित हैं। सर्परूपिणी महाशक्ति (कुण्डलिनी) भी वहीं स्थित है।।१०-११।।

लिङ्गच्छिद्रं तद्वक्त्रेण समाच्छाद्य स्थिता सदा।
ऐन्द्रबीजं वरारोहे लिङ्गस्य वामदेशके ।।१२।।
सुसिद्धं ब्रह्मसदनं नादोपरि सुसुन्दरम्।
तत्रैव निवसेद् ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता प्रजापतिः ।।१३।।

हे वरारोहे! सार्द्ध त्रिवलयाकृति मायाशक्ति कुण्डलिनी महेश्वररूपी लिंग को आवेष्टित करके विद्यमान है तथा उसने अपने मुख से लिंग के मुख को आच्छादित कर रखा है। हे वरारोहे! लिंगरूपी महेश्वर के बाँयीं ओर इन्द्रबीज 'लं' शोभित है। नाद के ऊर्ध्व में अत्यन्त सुसिद्ध सुन्दर ब्रह्मभवन सुशोभित है, जहाँ प्रजापति ब्रह्मा निवास करते हैं।।१२-१३।।

वामभागे च सावित्री वेदमाता सुरेश्वरी।
तस्याः प्रसादमासाद्य सृष्टिं वितनुते सदा ।।१४।।

यद्रूपं ब्रह्मसदनं लक्षयोजनविस्तृतम्।
तत्सर्वं परमेशानि ऋग्वेदाख्यं मयोदितम् ॥१५॥

उनके बाँयीं ओर देवताओं की अधीश्वरी वेदमाता सावित्री सुशोभित हैं। ब्रह्मा उनकी कृपा प्राप्त करके ही सृष्टि का विस्तार करते हैं।

हे परमेशानि! एक लाख योजन विस्तार वाला ब्रह्मभवन जिसे प्रकार अवस्थित है, उन सबको मैंने ऋग्वेद के नाम से अभिहित किया है।।१४-१५।।

त्रिकोणे परमेशानि द्विषष्टितमकोष्ठकाः।
तदेव पर्वतं प्रोक्तं सर्वदेवाग्रजं हि तत् ॥१६॥
त्रिकोणमध्ये तद्बाह्ये पश्चात् पूर्वं वरानने।
स्थावरं पर्वतं पश्य कीटं पशुमनुत्तमम्।
खगं नरादिकं देवि नास्ति किं पृथिवीतले ॥१७॥

हे परमेशानि! उस त्रिकोण में कुल बासठ कोष्ठ हैं। उसे ही सर्वदेवाग्रज पर्वत कहा गया है। हे वरानने! त्रिकोण के मध्य में, बाहर, पीछे एवं पहले स्थावर पर्वत, कीट, श्रेष्ठ पशु-पक्षी, मनुष्य आदि सभी कुछ दृश्यमान होते हैं। हे पार्वति! इस प्रकार इस पृथिवी पर सब कुछ विद्यमान है।।१६-१७।।

त्रिकोणबाह्ये गिरिजे पर्वतं बहुरूपकम्।
नीलाचलं मन्दरञ्च पर्वतं चन्द्रशेखरम् ॥१८॥
हिमालयं सुबेलञ्च मलयं भस्मपर्वतम्।
चतुष्कोणे वसेद्देवि एतत् सप्तकुलाचलम् ॥१९॥
एतेषां शिखराज्जातं पर्वतं बहुरूपकम्।
नानादेवालयो देवि तथैव दानवालयम् ॥२०॥
तृणगुल्मलतालक्षं नानारूपाणि तत्र वै।
जायन्ते च म्रियन्ते च पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥२१॥

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे श्रीशङ्करचण्डिकासंवादे योगविवरणं नाम चतुर्थः पटलः

हे पर्वतनन्दिनि! उस त्रिकोण के बाहर अनेक प्रकार के पर्वत विद्यमान हैं। हे देवि! नीलाचल, मन्दर, चन्द्रशेखर, हिमालय, सुबेल, मलय तथा भस्मपर्वत—ये सात कुलपर्वत उस चतुष्कोण मे ही विद्यमान हैं। हे देवि! इन पर्वतों के शिखर से अनेक प्रकार के पर्वत, अनेक देवालय, दानवालय, लाखों प्रकार के तृण-गुल्म-लता आदि पूर्वोक्त पथ से जन्म लेते हैं तथा नष्ट होते हैं।।१८-२१।।

निर्वाणतन्त्र का चतुर्थ पटल समाप्त

पञ्चमः पटलः

श्रीशिव उवाच

एतत् पद्मस्योर्ध्वदेशे भीमाख्यं पङ्कजं शुभम्।
पत्रषट्कं तथा वृत्तं चतुर्द्वारविभूषितम्।।१।।
पद्ममध्ये राजकोषे भुवर्लोकं मनोहरम्।
सिन्दूरसदृशं रक्तं वर्णेन शोभितं सदा।।२।।

श्रीशिव कहते हैं—इस पद्म के ऊर्ध्व भाग में भीम नामक कल्याणकारी पद्म अवस्थित है, जो छः पत्र, वृत्त एवं चार द्वारों से विभूषित है। उस पद्म के मध्यवर्ती राजकोष में सिन्दूर के समान रक्त वर्ण वाला मनोहर भुवर्लोक सदा शोभायमान रहता है।।१-२।।

सिन्दूराभरक्ताभ्रेण निर्मितं चक्रपाणिना।
तस्योर्ध्वे निवसेद् विष्णुः श्रीर्वाणी वामदक्षिणे।।३।।
ब्रह्मणा सृज्यते लोकः पाल्यते चक्रपाणिना।
वैकुण्ठं नाम तत्स्वर्गं नानादेवालयं हि तत्।।४।।
वैकुण्ठस्य दक्षभागे गोलोकं सर्वमोहनम्।
तत्रैव राधिका देवी द्विभुजो मुरलीधरः।।५।।

चक्रपाणि ने सिन्दूर के समान रक्तवर्ण मनोहर अभ्र से उस भुवर्लोक का निर्माण किया है। उसके ऊपर विष्णु का निवासस्थान है, जिनके बाँयें लक्ष्मी तथा दाहिने सरस्वती विद्यमान रहती हैं। ब्रह्मा लोकों की सृष्टि करते हैं एवं चक्रपाणि उसका पालन करते हैं। वह स्वर्ग वैकुण्ठ नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ बहुत से देवालय भी विद्यमान हैं। वैकुण्ठ के दाहिने भाग में सबको मोहित करने वाला गोलोक विद्यमान है, जहाँ राधिका देवी तथा दो भुजाओं वाले मुरलीधर शोभायमान हैं।।३-५।।

नारदाद्यैर्मुनिगणैः शोभितं वेदपारगैः।
वैकुण्ठसदृशं स्थानं नास्ति ज्ञाने च मामके।।६।।
अत्र मध्ये तथा बाह्ये ज्योतिषं परिपश्यति।
नानाभोगयुताः सर्वे नानारत्नेन भूषिताः।।७।।

इन्द्राद्या देवताः सर्वे यथा सर्वं प्रपश्यति।
तथैव भूमिगाः सर्वे तिष्ठन्ति स्तुतिहेतवे ॥८॥

वेदों के पारगामी नारद आदि मुनिगणों से वह स्थान शोभायमान है। मेरी जानकारी में वैकुण्ठ की बराबरी करने वाला अन्य कोई लोक नहीं है। यहाँ मध्य में तथा बाहरी भाग में अनेक ज्योतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। वे सभी अनेक प्रकार के भोगों से युक्त तथा अनेकविध रत्नों से भूषित रहती हैं। जिस प्रकार इन्द्र आदि देवता सब कुछ देख पाते हैं, वैसे ही मर्त्यगण भी स्तुति के कारण यहाँ स्थित रहते हैं।।६-८।।

महासत्त्वमयं लोकं वेदबाहुविराजितम्।
पीताम्बरं शान्तमूर्त्तिं वनमालाविभूषितम् ॥९॥
एवं भक्तजनं सर्वं वैकुण्ठे चोपशोभितम्।
विष्णुशब्दं विष्णुगानं वैष्णवं विष्णुरूपकम्।
विष्णुगानं विना नास्ति वैकुण्ठे परमेश्वरि ॥१०॥

महासत्त्वमय यह लोक वेदरूपी भुजाओं से सुशोभित है। इस वैकुण्ठधाम में सभी वैष्णव भक्तगण पीत वस्त्र धारण करने वाले, शान्त स्वरूप वाले, वनमाला धारण करनेवाले विष्णुस्वरूप में स्थित रहते हैं। वे विष्णु शब्द तथा विष्णुगान में सदा मग्न रहते हैं। हे परमेश्वरि! वैकुण्ठ में विष्णुगान के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।।९-१०।।

यद्रूपं धाम गोलोकं तद्रूपं नास्ति मामके।
ज्ञाने वा चक्षुषि किं वा ध्यानयोगे न विद्यते ॥११॥
शुद्धसत्त्वमयं देवि नानावेदेन शोभितम्।
तत्रैव भाति कैलासस्तत्रैव ब्रह्मणः पुरम् ॥१२॥
वैकुण्ठनगरं तत्र तत्रैव रविकालयम्।
चन्द्रालयं हि तत्रैव कन्दर्पनिलयं प्रिये ॥१३॥

गोलोकधाम के समान अन्य कोई लोक मेरी दृष्टि में कहीं नहीं है। न तो मेरे ज्ञान में, दृष्टि में या ध्यान में ही ऐसा धाम कहीं है। हे देवि! वह शुद्ध सत्त्वमय है तथा अनेक वेदों से सुशोभित है। वहीं कैलाश तथा ब्रह्मलोक भी अवस्थित है। वहीं वैकुण्ठ नगर तथा सूर्य का स्थान भी है। हे प्रिये! वहीं चन्द्रमा के साथ-साथ कामदेव का भी स्थान है।।११-१३।।

सर्वं देवालयं तत्र देवकन्यादिशोभितम्।
मध्यदेशे गोलोकाख्यं श्रीविष्णोर्भोगमन्दिरम् ॥१४॥

वहाँ देवकन्यादि से सुशोभित समस्त देवालय विद्यमान हैं। उसके मध्यदेश में गोलोक नामक श्रीविष्णु का भोगमन्दिर भी है।।१४।।

श्रीविष्णोस्तत्त्वरूपस्य यत्स्थानं चित्तमोहनम्।
तस्य स्थानस्य माहात्म्यं किं मया कथ्यतेऽधुना ॥१५॥
यत्रैव सततं भाति द्विभुजो मुरलीधरः।
निराकारो महाविष्णुः साकारोऽपि क्षणे क्षणे ॥१६॥
यदा साकाररूपोऽसौ तदैव मुरलीधरः।
तदा सत्त्वमयो विष्णुर्भुवनं पाति निश्चयम् ॥१७॥

चित्त को मोहित करने वाले तत्त्वरूपी श्रीविष्णु के स्थान का माहात्म्य मेरे द्वारा वर्णित नहीं किया जा सकता। जहाँ दो भुजाओं वाले मुरलीधर सर्वदा दीप्तिमान रहते हैं। वे क्षण-क्षण में कभी निराकार होते हैं, तो कभी साकार हो जाते हैं। जब वे साकार रूप धारण कर लेते हैं तब वे सत्त्वमय विष्णु निश्चित रूप से पृथिवी का पालन करते हैं।।१५-१७।।

वैष्णवस्य महामोक्षो यत्रैव परमेश्वरि।
इति स्थानस्य माहात्म्यं संक्षेपेण मयोदितम्।
विस्तारेण च शक्नोमि जन्मान्तरशतेन च ॥१८॥

हे परमेश्वरि! वहीं पर वैष्णवों को महामोक्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार उस स्थान की महिमा का मैंने संक्षेप में वर्णन किया। मैं सैकड़ों जन्म में भी उसकी महिमा का विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं कह सकता।।१८।।

बीजकोषस्य बाह्ये तु वेष्टितं तोयमण्डलम्।
प्रमाणं सुन्दरं तोयं यदा क्षीरोदसागरम् ॥१९॥
धूम्रस्य ज्योतिषाकारं कोटिचन्द्रसमद्युतिम्।
वलयावार रूपेण सुशुभ्रं तोयमण्डलम् ॥२०॥
गङ्गादिसरितः सर्वास्तत्रैव भान्ति सुन्दरि।
इन्द्रादिदेवताः सर्वाः स्तूयमाना निरन्तरम् ॥२१॥
गन्धर्वयक्षनागादि कूष्माण्डा भैरवास्तथा।
नानासुखविशेषेण सदा चैकाग्रचेतसः ॥२२॥
विष्णुगानं प्रकुर्वन्ति स्तुतिभक्तिपरायणाः।
वेदगानं प्रकुर्वन्ति चतुर्वक्त्रेण वेधसा ॥२३॥

वीजकोष वाहर से तोयमण्डल (जलमण्डल) से वेष्टित है। जब विस्तृत रूप से यह सुन्दर जल शोभित होता है तब उसे क्षीरोद सागर कहते हैं। यह तोयमण्डल धूमज्योति-स्वरूप है। यह करोड़ों चन्द्रमा के समान द्युतिमान होकर वलयाकार रूप

से अवस्थित है। हे सुन्दरि! सभी गंगादि नदियाँ वहाँ शोभायमान हैं। सदा स्तुति में निरत इन्द्रादि समस्त देवगण वहाँ सर्वदा दीप्तिमान हैं। इनके अतिरिक्त वहाँ पर गन्धर्व, यक्ष, नाग, कूष्माण्ड, भैरव आदि भी सुख में अतिशय मग्न होकर स्तुति तथा भक्तिपरायण होकर एकाग्र मन से विष्णु का नामगान करते रहते हैं। ब्रह्मलोकवासी ब्रह्मा भी वहाँ अपने चारो मुखों से वेदगान करते रहते हैं।।१९-२३।।

मालवादि च षड्रागाः षट्त्रिंशद्रागिणी तथा।
वेदगानेन भाषन्ते मूर्त्तिमन्तः सदैव हि ॥२४॥
मालवेनैव रागेण सामगानं सदा प्रिये।
मल्लारेण सदाथर्वं वसन्तेन तथा पुनः ॥२५॥
हिल्लोलेन यजुःपाठं सदा कुर्वीत वेधसा।
कर्णाटैनैव ऋग्वेदं श्रीरागेण तथा शिवे ॥२६॥

वहाँ मालवादि छः राग तथा छत्तीस रागिणियाँ मूर्त्तिमान होकर वेदगान द्वारा दीप्तिमान रहती हैं। हे प्रिये! वहाँ मालव राग में सामगान एवं मल्लार तथा वसन्त राग में अथर्ववेद का गायन होता रहता है। हे शिवे! वहाँ हर समय ब्रह्मा द्वारा हिल्लोल राग में यजुर्वेद तथा कर्णाट एवं श्रीराग में ऋग्वेद का गान किया जाता है।।२४-२६।।

निर्दिष्टपाठमेतत्तु अनिर्दिष्टमतः परम्।
तत्रैव रागा वर्त्तन्ते सहस्राणि च षोडश।
तत्रैव भान्ति तासाञ्च सहस्राणि च षोडश ॥२७॥

इस प्रकार यह तुमसे निर्दिष्ट पाठ की बातें कहीं। इसके अतिरिक्त न जाने कितने अनिर्दिष्ट पाठ भी वहाँ होते रहते हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती। वहाँ सोलह हजार राग एवं सोलह हजार ही रागिणियाँ दीप्तिमान रहती हैं।।२७।।

मुरारेर्मुरलीगानाद् जायन्ते सर्वतालकाः।
तेन तालेन रागेण सदा गायन्ति वेधसः ॥२८॥
तद्रागस्य विभागं हि कुर्वन्ति मुनयो जनाः।
वसन्ताद्याश्च ऋतवस्तिष्ठन्ति तत्र सन्ततम् ॥२९॥

मुरारी की मुरली के गान से सभी तालों की उत्पत्ति होती है। उसी ताल तथा राग के द्वारा ब्रह्मलोकवासी सदा गायन करते हैं। मुनिगणों ने उन रागों का विभाग किया है। वहाँ वसन्त आदि ऋतुयें सर्वदा विराजमान रहती हैं।।२८-२९।।

नानाऋतुप्रसूनेन भूषितो मुरलीधरः।
तत्रैव राधिका देवी नानासुखविलासिनी।
वदन्ती मुरलीगानं कुरु कान्त प्रमोहणम् ॥३०॥

येन शब्देन कामस्य उत्पत्तिर्जायते सदा।
तद्रागञ्चैव तत्तालं कुरु गानं प्रयत्नतः ॥३१॥

अनेक ऋतुओं के पुष्पों से मुरलीधारी सदा अलंकृत रहते हैं। वहाँ पर नाना सुखों से विलासिनी राधिकादेवी कहती हैं—हे कान्त! तुम प्रमोहन मुरलीगान करो। जिस शब्द से सर्वथा काम की उत्पत्ति होती है, तुम यत्नपूर्वक उसी ताल तथा उसी राग से युक्त गायन करो।।३०-३१।।

एवमानन्दसंयुक्ता महावेशविलासिनी।
वामभागे सदा भाति राधिका भक्तवत्सला।
प्रार्थनैकां प्रकुर्वीत राधिका भक्तिसंयुता ॥३२॥

इस प्रकार से आनन्दमग्ना महावेशविलासिनी भक्तवत्सला श्री राधिका सदैव उनके वाम भाग में शोभा पाती हैं। राधिका ने भक्तिपूर्वक एक प्रार्थना किया।।३२।।

श्रीराधिका उवाच

तव भक्तियुता मर्त्यास्तथैव भक्तिसंयुताः।
गोलोकस्थं महाविष्णुं द्विभुजं मुरलीधरम् ॥३३॥
सदानन्दयुतं देवं मम सङ्गे विराजितम्।
एवं ध्यायति यो मर्त्यस्तस्योपायस्तु कीदृशः।
तद्वदस्व विशेषेण यद्यहं तव वल्लभा ॥३४॥

श्री राधिका कहती हैं—हे प्रिय! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ, तब यदि आपके भक्त मर्त्यवासीगण भक्तियुक्त होकर गोलोकस्थ महाविष्णु तथा मेरे साथ सदा आनन्द से युक्त होकर मेरे साथ विराजित आप मुरलीधर की उपासना करें, तब उनकी क्या गति होगी, यह कहिये।।३३-३४।।

श्रीभगवान् उवाच

ये यथा मां भजन्त्येव तेन मार्गेण सद्गतिम्।
दास्यामि शृणु चार्वङ्गि सदा त्वं भक्तवत्सला ॥३५॥
आदौ राधां ततः कृष्णं जपन्ति ये च मानवाः।
तेषाञ्च सद्गतिञ्चात्र दास्यामि नात्र संशयः ॥३६॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे सुन्दर अंगों वाली! तुम भक्तवत्सला हो, सुनो। जो जिस भाव से मेरा भजन करता है, मैं उसे उसी भाव से सद्गति देता हूँ; इसमें कोई संशय नहीं है। जो मनुष्य पहले राधा तब कृष्ण अर्थात् राधाकृष्ण का जप करता है, उसे मैं सद्गति प्रदान करता हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३५-३६।।

गुरुणा भावमार्गेण मन्त्रमार्गेण चैव हि।
ये जना मां भजन्त्येव ते नरा मत्समाः सदा ॥३७॥
या नारी मामभेदेन भजते पुरुषं सदा।
त्वत्समा सा सदा नारी जायते नात्र संशयः ॥३८॥

श्रेष्ठ भावमार्ग अथवा मन्त्रमार्ग से जो मेरी उपासना करते हैं, वे सदा मेरे ही तुल्य होते हैं। जो नारी अपने पति की उपासना मुझसे अभिन्न रूप से करती है, वह निःसन्देह रूप से तुम्हारे समान ही होती है।।३७-३८।।

भक्त्या वाप्यथवाऽभक्त्या जपन्ति युगलं यदि।
तव भक्त्या प्रदास्यामि सद्गतिं शृणु राधिके ॥३९॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं हि राधिके।
मद्भक्ता नैव गच्छन्ति कदाचिद्यममन्दिरम् ॥४०॥

भक्ति से अथवा अभक्ति से जो हम दोनों के युगल रूप की उपासना करता है, उसे तुम्हारी भक्ति के कारण मैं सद्गति प्रदान कर देता हूँ। हे राधिके! सुनो; यह सत्य है, पुनः सत्य है, सत्य है, सत्य है। मेरा भक्त कभी भी यमलोक में प्रवेश नहीं करता।।३९-४०।।

इति श्रुत्वा च सा देवी राधिका प्रेमवत्सला।
चाङ्गे शेते महाविष्णोः कामभावेन पीडिता।
विष्णुलोकमिदं देवि चापरं शृणु यत्नतः ॥४१॥

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चण्डिका-
शङ्करसंवादे पञ्चमः पटलः

यह सुनकर उन प्रेमवत्सला राधिका देवी ने कामभाव से पीड़ित होकर महाविष्णु के अंग पर शयन किया। भगवान् ने कहा—इस प्रकार मैंने विष्णुलोक का वर्णन किया। हे देवि! अब अन्य प्रसंग को यत्नपूर्वक सुनो।।४१।।

निर्माणतन्त्र का पञ्चम पटल समाप्त

●

षष्ठः पटलः

श्रीशङ्कर उवाच

एतत् पद्मस्योर्ध्वदेशे महापद्मं सुदुर्लभम्।
दशपत्रं नीलवर्णं सजलं व्योमरूपकम्।
डादिफान्तैः सचन्द्रैश्च पङ्कजैश्चातिशोभनम्॥१॥

श्री शङ्कर कहते हैं—इस कमल के ऊर्ध्व में सुदुर्लभ महापद्म स्थित है। इसके नील वर्ण के दश पत्र हैं। उसमें व्योम (ल) जल (ऋ) अर्थात् 'ऌ' शोभित है। इन पद्मपत्रों की बिन्दुयुक्त ड से फ-पर्यन्त (डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं)—इन दश वर्णों की स्थिति से अतीव शोभा है।।१।।

तन्मध्ये बीजकोषे निवसति सततं वह्निबीजं सुसिद्धम्।
बाह्ये तत्त्रैपुराख्यं नवतपननिभं स्वस्तिकं तत्त्रिभागम्॥२॥

उसके मध्य बीजकोष में सुसिद्ध वह्निबीज (रं) अवस्थित है। बाहर से वह नवसूर्य के समान त्रिभाग स्वस्तिक से दीप्तिमान है।।२।।

स्वर्लोकाख्यमिदं देवि सर्वदेवैः प्रपूजितम्।
साकारं वह्निबीजञ्च सदैव मेघवाहनम्॥३॥
रुद्रालयं हि तत्रैव महामोहस्य नाशनम्।
भद्रकाली महाविद्या वामभागेन शोभिता॥४॥

हे देवि! सभी देवताओं से पूजित यही है—स्वर्गलोक। यहाँ देह (श) मेघ (ख) तथा वाहन (य) एवं आकारयुक्त अग्निबीज (रां) विद्यमान है। यहीं पर महामोह का नाशक रुद्रालय भी है। यहाँ वाम भाग में महाविद्या भद्रकाली शोभित हैं। ये ही संहार करने वाली हैं।।३-४।।

ब्रह्मणा सृज्यते लोकः पाल्यते विष्णुरूपिणा।
परदेवो रुद्ररूपः सदा संहारकारकः॥५॥
संहाररुद्ररूपेण भद्रकालिकया सह।
रुद्रस्य भावनाद् देवि किं न सिध्यति चण्डिके॥६॥

यह लोक ब्रह्मा द्वारा सृष्ट होता है। यह विष्णुरूपी परमेश्वर से पालित होता है। और इसका परमदेव रुद्ररूप से संहार करते हैं।

हे देवी चण्डिके! संहार रुद्ररूप तथा भद्रकाली के साथ परमदेव रुद्र का ध्यान करने से ऐसी कौन-सी सिद्धि है, जो प्राप्त न होती हो।।५-६।।

यद्रूपं कथितं पूर्वं गोलोकं सर्वमोहनम्।
तस्माद् वै सर्वतोभावे रुद्रलोकं चतुर्गुणम्।।७।।
रुद्रलोकं महास्वर्गं गोलोकाद् वै चतुर्गुणम्।
महामोक्षप्रदं नित्यं रुद्रं भस्माङ्गभूषणम्।।८।।
भद्रकाली महाविद्या रुद्रस्य वामदेशके।
विष्णुना पाल्यते यद्वत् कालीरूपेण युज्यते।।९।।

पूर्व में सर्वमोहन गोलोक का जो प्रसंग कहा गया, रुद्रलोक उसकी तुलना में चतुर्गुण है। महास्वर्ग रुद्रलोक गोलोक से भी चतुर्गुण सुन्दर है। यह महामोक्षप्रद है, एवं नित्य भस्मधारी रुद्रदेव से विभूषित है। यहाँ रुद्र के वाम भाग में भद्रकाली अवस्थित हैं। जिस प्रकार विष्णु पालन करते हैं, उसी प्रकार रुद्र काली से युक्त होते हैं।।७-९।।

अतः कालीं महादेवीं सदैव मुरलीधरः।
आराध्य बहुयत्नेन वैकुण्ठाधिपतिर्भवेत्।।१०।।

अत: काली महादेवी की अनेक प्रकार से आराधना करके भगवान् मुरलीधर वैकुण्ठ के अधिपति होते हैं।।१०।।

गोलोकाधिपतिर्देवि स्तुतिभक्तिपरायणः।
कालीपादप्रसादेन स भवेल्लोकपालकः।।११।।
लोकानां रक्षणार्थाय सश्रीको मुरलीधरः।
समाराध्य भद्रकालीं गोलोके निवसेत्तदा।।१२।।
प्रसादात्कालिकायाश्च भुज्यते विष्णुना सदा।
अतश्च पालको विष्णुर्महासत्त्वपरायणः।।१३।।

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चण्डिकाशङ्कर-
संवादे षष्ठः पटलः

हे देवि! गोलोक के पति भी देवी काली की स्तुति तथा भक्ति करके ही गोलोक में वास करके लोकपालक हो सके हैं। लक्ष्मी के साथ मुरलीधर भी भद्रकाली की आराधना द्वारा ही लोकसमूह की रक्षा के लिये गोलोक में रहते हैं। कालिका की कृपा से ही विष्णुदेव महासत्त्वपरायण पालक हो सके हैं।।११-१३।।

निर्वाणतन्त्र का षष्ठ पटल समाप्त

●

सप्तमः पटलः

श्रीशिव उवाच

एतत् पद्मस्योर्ध्वदेशे विमलं पद्मसुन्दरम्।
शोभितं द्वादशैः पत्रैः शोणवर्णसमन्वितम् ॥१॥

श्री शिव कहते हैं—इस पद्म के ऊपर द्वादश पत्रयुक्त शोण वर्ण वाला विमल एवं सुन्दर पद्म शोभित है।।१।।

वाञ्छातिरिक्तफलदं शुद्धसिन्दूरसन्निभम्।
पद्ममध्ये बीजकोषे षट्कोणमण्डलं शुभम् ॥२॥
मण्डलस्य मध्यदेशे वायुबीजं मनोहरम्।
सजीवं वायुबीजञ्च वेदबाहुविराजितम् ॥३॥
या विद्या भुवनेशानी त्रिषु लोकेषु पूजिता।
ईश्वरस्य वामभागे सा देवी परितिष्ठति ॥४॥

इस पद्म से इच्छा से भी अधिक फल की प्राप्ति होती है। शुद्ध सिन्दूर के समान पद्म के मध्य में बीजकोष में मंगलप्रद शुभ षट्कोण मण्डल स्थित है। मण्डल के मध्य में वायुबीज (यं) तथा चतुष्कोण में जीवयुक्त वायुबीज (लं यं) शोभित है। जो भुवनेशानी विद्या तीनों लोकों में पूजित होती है,वह ईश्वर के वाम भाग में अधिष्ठित रहती है।।२-४।।

महर्लोकमिदं भद्रे पूजास्थानं सुरेश्वरि।
तत्रैव मानसं यागं कुरुते योगवित्तमः ॥५॥
सिन्दूरारक्तं चार्वङ्गि स्फाटिकैर्निर्मितं ततः।
अतश्च मानवाः सर्वे ज्योतिः सम्परिपश्यति ॥६॥
सर्वावयवसंयुक्ता देवास्तिष्ठन्ति सन्ततम्।
भूमिगाः परिपश्यन्ति चक्राकारं हि तेजसाम् ॥७॥

हे भद्रे सुरेश्वरि! यही पूजास्थान महर्लोक है। वहाँ योगिश्रेष्ठ मानस याग करते हैं। हे सुन्दर अंगों वाली! यह स्थान सिन्दूर से लाल तथा स्फटिक-निर्मित है। तभी तो यहाँ सभी मानव ज्योति का दर्शन करते हैं। यहाँ सकल अवयवों से युक्त देवगण

सदैव विद्यमान रहते हैं; लेकिन मर्त्यलोकवासी उस तेज:समूह को चक्राकार रूप में ही देख पाते हैं।।५-७।।

स्वर्लोकगामिनः सर्वे साकारं परिपश्यति।
अङ्गभेदं न पश्यन्ति स्थूलरूपनिरीक्षणम्॥८॥
यथैव भूमिगा लोकाः प्रचरन्ति महीतले।
तथैव देवताः सर्वाः स्वर्गे तिष्ठन्ति पार्वति॥९॥

स्वर्गलोक में वास करने वाले उन सबको आकारयुक्त देख पाने में समर्थ होते हैं, परन्तु वे भी उनके स्थूल रूप को ही देखने में सक्षम हो पाते हैं, उनके शरीरस्थ अंगभेद को नहीं देख पाते। हे पार्वति! मर्त्यवासी जिस प्रकार से पृथिवी पर अवस्थान करते हैं, देवगण उसी प्रकार से स्वर्ग में वर्त्तमान रहते हैं।।८-९।।

भूर्लोके निवसेद् ब्रह्मा भुवर्लोके जनार्दनः।
स्वर्लोके निवसेच्छम्भुः सदा संहारकारकः॥१०॥
ब्रह्मादीनाञ्च ईशानः सर्वकर्त्ता च ईश्वरः।
सर्वस्वामित्वरूपञ्च सर्वकर्त्ता सुरेश्वरः।
सृष्टिस्थितिलयादीनां कर्त्ता च परमेश्वरः॥११॥

भूलोक में ब्रह्मा, भुवर्लोक में विष्णु तथा स्वर्लोक में संहारकारी शम्भु सदा वास करते हैं। ब्रह्मादि देवताओं के अधिपति शंकर सब कुछ करने में समर्थ हैं; साथ ही वे ही सबके स्वामी-स्वरूप, सबके कर्त्ता, देवगण के अधिपति एवं सृष्टि-स्थिति-लय के कारक परमेश्वर हैं।।१०-११।।

गोलोकं कथितं देवि यद्रूपं शोभितं सदा।
तस्माच्छतगुणं देवि महर्लोकं सुसुन्दरम्।
विस्तीर्णञ्च शतगुणं सर्वं शतगुणं शिवे॥१२॥
महर्लोकस्य माहात्म्यं किं वक्तुं शक्यते मया।
गोलोकस्य शतगुणं सर्वत्र परमेश्वरि॥१३॥

हे देवि! जैसे गोलोक सर्वदा शोभित है, महर्लोक उससे भी सौगुणा अधिक सुन्दर है। हे शिवे! गोलोक से महर्लोक का विस्तार सौगुणा अधिक है। वहाँ सब कुछ सौगुणा है। उस महर्लोक की महिमा मैं कैसे कह सकता हूँ। हे परमेश्वरि! वहाँ सब कुछ गोलोक की तुलना में सौगुणा ज्यादा है।।१२-१३।।

महर्लोके वसेद् यो हि सामान्यभावतत्परः।
तस्मादेव शतांशैकः गोलोके मुरलीधरः॥१४॥

तदाज्ञां प्राप्य सहसा सृज्यते पद्मयोनिना।
तदाज्ञया पाति लोकान् द्विभुजो मुरलीधरः॥१५॥
एवं हि रुद्ररूपेण संहरत्यखिलं जगत्।
सर्वकर्त्ता यतो देवि अतः सः परमेश्वरः॥१६॥
ईश्वरः सर्वकर्त्ता च निर्गुणस्यालयः शिवः।
भुवनेशीं विना देवि स्पन्दितुं नैव शक्यते॥१७॥

महर्लोक में जो सामान्य भाव से तत्पर होकर वास करते हैं, उनकी अपेक्षा शतांश गुणसम्पन्न मुरलीधर गोलोक में रहते हैं। (महर्लोकस्थ की) उनकी आज्ञा से ब्रह्मा सृष्टि करते हैं तथा उनकी ही आज्ञा से मुरलीधर (द्विभुज) सृष्टि का पालन करते हैं। इस प्रकार रुद्ररूप से वे ही अखिल सृष्टि का संहार करते हैं। हे देवि! क्योंकि वे ही सब कुछ करने वाले हैं; इसीलिये वे परमेश्वर हैं। सर्वकर्त्ता ईश्वर शिव निर्गुण हैं। अत एव भुवनेश्वरी के विना तो वे स्पन्दित होने में भी सक्षम नहीं हैं।।१४-१७।।

पङ्गुप्रायः सदा ईशो गमितुं नैव शक्यते।
भुवनेशीं समाराध्य सर्वस्वामी च ईश्वरः॥१८॥
अत एव महेशानि तथैव मोक्षदायिनी।
विश्वमाता च सा देवी विश्वपालनकारिणी॥१९॥
मोक्षदा सर्वलोकानां मुक्तिदा विश्वमातृका।
भुवनेशीं विना ईशः किञ्चित्कर्त्तुं न शक्यते॥२०॥

ईश्वर तो सदा पंगुप्राय: ही हैं। उनमें चलने तक की क्षमता नहीं है। भुवनेशी का आश्रय लेकर ही वे सर्वस्वामी तथा ईश्वर हैं। हे महेशानि! इसीलिये देवी भुवनेशी ही मोक्षदात्री हैं, वे ही विश्वजननी एवं विश्वपालिका हैं। विश्वमाता भुवनेशी मोक्ष प्रदान करने वाली तथा समस्त लोकों को मुक्ति प्रदात्री हैं। उनके विना ईश्वर कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सकते।।१८-२०।।

अत एव हि सा देवि मोक्षदा सर्वरूपिणी।
इति ते कथितं किञ्चित् महर्लोकस्य लक्षणम्।
समासेन परमेशानि अथान्यत् शृणु सादरम्॥२१॥

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चण्डिकाशङ्कर-
संवादे सप्तमः पटलः

हे देवि! इसी कारण वे सर्वस्वरूपा तथा मोक्षदा हैं। हे परमेश्वरि! इस प्रकार तुमसे संक्षेप में महर्लोक के कुछ स्वरूप का वर्णन किया। अब अन्य विवरण भी मुझसे संक्षेप में सुनो।।२१।।

निर्वाण तन्त्र का सप्तम पटल समाप्त

●

अष्टमः पटलः

श्रीशङ्कर उवाच

अस्योद्ध्वें निर्मलं पद्मं सर्वमोहनकारणम्।
षोडशैः पत्रकैर्युक्तं मोहान्धकारनाशनम् ॥१॥
धूममध्ये यथा वह्निस्तथा ज्योतिर्मयं प्रिये।
पद्ममध्ये वराटे च जनलोकं सुसुन्दरम् ॥२॥

श्रीं शंकर कहते हैं—इससे ऊर्ध्व में सर्वमोहनकारण सोलह दलों वाला मोहरूप अन्धकार का नाशक एक निर्मल पद्म अवस्थित है। हे प्रिये! जिस प्रकार धूयें के भीतर अग्नि छिपी रहती हैं, वैसे ही इस पद्म के मध्य में वराट देश में अत्यन्त सुन्दर जनलोक स्थित है।।१-२।।

महामोहान्धशमनं तद्बाह्ये चन्द्रमण्डलम्।
देववृन्दैर्गायकैश्च मुनिभिः परिशोभितम् ॥३॥

उसके बाहर महामोहरूपी अन्धकार का नाशक चन्द्रमण्डल स्थित है। वह स्थान चारो ओर से देवताओं, गन्धर्वों एवं मुनियों द्वारा शोभित है।।३।।

गोलोकस्य लक्षगुणमिह स्थानं सुदुर्लभम्।
देवत्वञ्च मनोज्ञञ्च विस्तीर्णञ्च तथा पुनः ॥४॥

यह स्थान गोलोक की अपेक्षा लक्षगुणा सुदुर्लभ है तथा देवत्वयुक्त, मनोज्ञ एवं विस्तृत है।।४।।

सर्वं लक्षगुणं देवि गोलोकान्नात्र संशयः।
बीजकोषे मणिद्वीपे षट्कोणयन्त्रमुत्तमम् ॥५॥

हे देवि! यह स्थान गोलोक से सभी बातों में लाखों गुणा अधिक है, इसमें कोई संशय नहीं है। यह स्थान मणिद्वीपरूप वीजकोष में उत्तम षट्कोण यन्त्र के रूप में विभाजित है।।५।।

यन्त्रमध्ये च वृत्ताभं महासिंहार्धदेहकम्।
तस्योपरि सदा गौरी दक्षभागे सदाशिवः ॥६॥

त्रिनेत्रः पञ्चवक्त्रश्च प्रतिवक्त्रे त्रिलोचनः ।
विभूतिभूषिताङ्गश्च रजताचलसोदरः ॥७॥
व्याघ्रचर्मधरो देवः फणिमालाविभूषितः ।
लोकानामिष्टदाता च लोकानां भयनाशनः ॥८॥

यन्त्र के मध्य में वृत्तरूप महासिंह की अर्द्धदेह परिदृष्ट होती है। उसके ऊपर गौरी तथा दाहिनी ओर सदाशिव सदैव स्थित रहते हैं। वे त्रिनेत्र तथा पंचानन हैं। उनके प्रत्येक मुख में तीन नेत्र हैं। उनके सभी अंग विभूति से भूषित हैं तथा वे रजत पर्वत के सदृश उज्ज्वल हैं। वे देव व्याघ्रचर्म को धारण करने वाले, मणिमाला से विभूषित, लोकसमूह के अभीष्टदाता तथा लोकों के भय का नाश करने वाले हैं।।६-८।।

लोकानां मुक्तिजनको लोकानां ज्ञानदायकः ।
आराधकस्य ब्रह्मत्वदायको विष्णुपूजितः ॥९॥
सर्वानन्दकरो देव अर्धनारीश्वरो विभुः ।
क्वचिज्ज्योतिर्मयो देवो क्वचिदाकारवर्जितः ॥१०॥

वे लोकों को मुक्ति तथा ज्ञान प्रदान करने वाले हैं। वे आराधक को ब्रह्मत्व प्रदान करते हैं तथा विष्णु द्वारा पूजित हैं। वे ही समस्त आनन्द के कर्त्ता, अर्द्धनारीश्वर तथा सर्वव्यापक हैं। ये कभी ज्योतिर्मय स्वरूप वाले हैं तो कभी किसी भी प्रकार के आकार से रहित भी हैं।।९-१०।।

देवानां पूज्यरूपश्च देवानां स्वामिरूपकः ।
भक्तस्य मुक्तिदो नित्यं विष्णुत्वदायको विभुः ॥११॥
बिल्वपत्रैः पूजकस्य निजसायुज्यदायकः ।
गोलोकाधिपतिं कृत्वा भक्तं रक्षति यः शिवः॥१२॥

वे देवगण के पूज्य हैं तथा देवों के स्वामिरूप भी हैं। वे भक्त को मुक्ति देने वाले होने के साथ-साथ सर्वव्यापी देवता विष्णुत्व भी प्रदान करने में समर्थ हैं। जो शिव गोलोक के अधिपति भक्त की (मुरलीधर की) रक्षा करते हैं, वे ही बिल्वपत्र से पूजन करने वाले को अपना सायुज्य प्रदान करते हैं।।११-१२।।

तस्य देवस्य माहात्म्यं विस्तारेण च किं प्रिये ।
या गौरी लोकमाता च शम्भोरर्द्धाङ्गधारिणी ॥१३॥
त्रिगुणा सा महागौरी गुणैकेन पिनाकधृक् ।
तस्याः सङ्गं समाराध्य सर्वकर्त्ता सदाशिवः ॥१४॥

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चण्डिकाशङ्कर-
संवादे अष्टमः पटलः

हे देवि! उन देव के माहात्म्य को विस्तार से मैं क्या कहूँ। हे प्रिये! जो लोकमाता शंकर की अर्धाङ्गिनी गौरी हैं, वे ही हैं—त्रिगुणात्मिका महागौरी। उनके गुणों के मात्र एक अंश को प्राप्त करके ही पिनाकधारी सदाशिव सर्वकर्त्ता हो सके हैं।।१३-१४।।

निर्वाणतन्त्र का अष्टम पटल समाप्त

●

नवमः पटलः

श्रीशङ्कर उवाच

एतत्पद्मस्योर्ध्वदेशे ज्ञानपद्मं सुदुर्लभम्।
पत्रद्वयसमायुक्तं पूर्णचन्द्रस्य मण्डलम् ॥१॥
पद्ममध्ये बीजकोषे स्मरेच्चिन्तामणिं पुरीम्।
तन्मध्ये नवकोणञ्च यन्त्रं परमदुर्लभम् ॥२॥

श्रीशंकर कहते हैं—इस पद्म के ऊर्ध्व में पूर्ण चन्द्रमण्डल के समान आकृति वाला पत्रद्वय से युक्त अत्यन्त दुर्लभ ज्ञानपद्म विराजमान है। उस पद्म के मध्य बीजकोष में चिन्तामणिरूप पुरी का स्मरण करना चाहिये एवं उसके मध्य में नवकोण वाले अत्यन्त दुर्लभ यन्त्र का स्मरण करना चाहिये।।१-२।।

शम्भुबीजं हि तन्मध्ये साकारं हंसरूपकम्।
हंसः परंब्रह्मरूपं साकारं शिवरूपकम् ॥३॥
तारश्चक्षुर्वरारोहे निगमागमपक्षवान्।
शिवशक्तिपदद्वन्द्वं बिन्दुत्रयविलोचनम् ॥४॥
विहारश्चास्य हंसस्य हेमपङ्कजपूरिते।
एवं हंसो मणिद्वीपे तस्य क्रोडे परः शिवः ॥५॥

उसके मध्य में हंसरूप विराजित है। उनका साकार रूप शम्भुबीज (हौं) में स्थित है। 'हंसः' परब्रह्मस्वरूप है एवं शिवरूप है साकार रूप। हे वरारोहे! ॐकार उनका चक्षु है। निगम-आगम दो पक्ष हैं। शिव तथा शक्ति दो चरण हैं। बिन्दुत्रय उनके त्रिलोचन हैं। इस हंस का विहार है स्वर्णपद्म-शोभित स्थान में। मणिद्वीप में ऐसे हंस का अवस्थान है। उसके क्रोड़ में परमशिव स्थित हैं।।३-५।।

वामभागे सिद्धकाली सदानन्दस्वरूपिणी।
तस्याः प्रसादमासाद्य सर्वकर्त्ता महेश्वरः ॥६॥
तपोलोकमिदं भद्रे सर्वदेवस्य दुर्लभम्।
यत्र ब्रह्मादया देवा ध्यानयोगं सदाभ्यसेत् ॥७॥
मनसापि न लभ्येत योगेन तपसा न च।
तपोलोकं गोलोकस्य चतुर्लक्षगुणं शिवे ॥८॥

ब्रह्मलोकेषु ये देवा वैकुण्ठे ये सुरादयः।
शम्भुलोके वसेद्यो यस्ते च भक्तिपरायणाः ॥९॥
तपस्यापि न लभ्येत तपोलोकमतः शिवे।
तपोलोकसमो नास्ति लोकमध्ये सुलोचने ॥१०॥

उनके बाँयीं ओर सदानन्दस्वरूपा सिद्धिकाली अवस्थित हैं। इनकी कृपा प्राप्त करके ही महेश्वर सर्वकर्त्ता हैं। हे भद्रे! वहाँ ब्रह्मादि देवता सर्वदा ध्यानयोग का अभ्यास करते रहते हैं। समस्त देवताओं के लिये भी दुर्लभ यही तप:लोक है।

हे शिवे! मन से, योग से तथा तपस्या से भी इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। गोलोक से चार लाख गुणा विस्तृत यह तप:लोक है।

हे शिवे! ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ तथा शिवलोक में स्थित देवगण भक्तिपरायण होकर तपस्या के द्वारा भी इस स्थान को प्राप्त नहीं कर पाते। तभी तो यह तपोलोक है। हे सुनयने! इसके समान कोई भी लोक नहीं है। ९ १०।।

सालोक्यं महर्लोकः स्यात्सारूप्यं जनलोकके।
सायुज्यं तपोलोकेषु निर्वाणं हि तदूर्ध्वके ॥११॥
अतो ब्रह्मादयो देवस्तपोलोकार्थिनः सदा।
तस्य लोकस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥१२॥

महर्लोक में सालोक्य, जनलोक में सारूप्य एवं तपोलोक में सायुज्य की प्राप्ति होती है। इस तपोलोक से ऊर्ध्वलोक में निर्वाण मिलता है। अत: ब्रह्मादि समस्त देवता भी सदा तपोलोक की कामना करते रहते हैं। उस लोक की महिमा का वर्णन करने में मैं समर्थ नही हो सकता।।११-१२।।

इति ते कथितं कान्ते स्वर्गषट्कस्य लक्षणम्।
यज्ज्ञानादमरत्वञ्च जीवन्मुक्तश्च साधकः ॥१३॥
यज्ज्ञानाज्जननीगर्भे न विशन्ति कदाचन।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं स प्राप्नोति न संशयः ॥१४॥

हे प्रिये! इस प्रकार तुमसे इन छ: स्वर्गों के लक्षण को मैंने कहा। इसे जानकर साधक अमरत्व प्राप्त करके जीवन्मुक्त हो जाता है। (यह वह ज्ञान है) जिसे जान लेने पर ज्ञाता का कभी भी मातृगर्भ में प्रवेश नहीं होता। (ऐसे साधक) आयु, आरोग्य तथा ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।।१३-१४।।

पुराणानि च सर्वाणि मयैवोक्तानि पार्वति।
एतद्रूपञ्च तन्मध्येऽव्यक्तरूपो न विद्यते ॥१५॥

हे पार्वति! समस्त पुराणों को भी मैंने ही कहा है; लेकिन उन पुराणों में इस प्रकार के अव्यक्त स्वरूप का विवेचन नहीं किया गया है।।१५।।

गूढज्ञानञ्च तन्मध्ये अतः किञ्चिन्न बुध्यते।
एवं हि वेदशास्त्रेषु ज्ञानमध्ये सुलोचने।
शब्दज्ञानं यतो नास्ति अतः किञ्चिन्न बुध्यते॥१६॥

इसीलिये उन पुराणों में किसी प्रकार का गूढ़ ज्ञान दिखाई नहीं देता। हे सुनयने! ज्ञानों में वेदशास्त्र का शब्दज्ञान प्रधान हैं। उस शब्दज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान नहीं होता।।१६।।

अष्टादशपुराणनि साङ्गं वेत्ति च यो नरः।
तस्य स्थाने पुराणानां सदा श्रवणमाचरेत्।
मूढ़े च चाल्पपाठज्ञे न श्रोतव्यं कदाचन॥१७॥

जो व्यक्ति अंगों के सहित अट्ठारह पुराणों को जानता है, उसी से पुराणों का सदा-सर्वदा श्रवण करना चाहिये। मूढ़, अल्पज्ञ अथवा केवल पाठ करने वाले से कभी भी पुराणोपदेश का श्रवण नहीं करना चाहिये।।१७।।

शास्त्रस्य लक्षणं ह्येतद्व्याख्या चान्यत्प्रकाशते।
शम्भुः ब्रह्मस्वरूपश्च मम वक्त्राद् विनिर्गतः॥१८॥

शास्त्रों की इस प्रकार से व्याख्या किया। अन्य भी प्रकाशित होगा। ब्रह्मस्वरूप शम्भु के स्वरूप का वर्णन मेरे मुख से निर्गत हुआ।।१८।।

सन्देहो नैव कर्त्तव्यो यदि मुक्तिं प्रयच्छति।
सन्देहात् पामरो याति रौरवं पितृभिः सह॥१९॥

यदि मुक्ति की कामना हो तो इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। सन्देह करने से वह पापी व्यक्ति अपने पितरों के साथ रौरव नरक में गमन करता है।।१९।।

ज्ञानञ्च निर्मलं कृत्वा बुद्धिञ्च निर्मलां ततः।
महाभक्तियुतो भूत्वा सर्वप्राणिहिते रतः॥२०॥
शब्दब्रह्ममयं देवि श्रृणोति तन्त्रविद्यदि।
तदा मुक्तिमवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः॥२१॥
अष्टदशपुराणानां श्रवणेनैव यत्फलम्।
चतुर्वेदानां साङ्गानां श्रवणेनैव यत्फलम्॥२२॥
मेरुतुल्यं सुवर्णञ्च गुरवे ब्रह्मरूपिणे।
सशस्यां परमेशानि सप्तद्वीपां वसुन्धराम्॥२३॥

प्रदद्याद् भक्तिभावेन यदि स्याद् वेदपारगः।
तस्माद् वै परमेशानि फलं बहुविधं शिवे ॥२४॥

ज्ञान तथा बुद्धि को निर्मल करके महाभक्तियुक्त होकर तथा समस्त प्राणीगण के कल्याण में निरत रहकर यदि तन्त्रवेत्ता शब्दब्रह्ममय तत्त्व का श्रवण करता है, तो हे देवि! वह मुक्ति प्राप्त करता है; यह निःसन्दिग्ध रूप से सत्य है।

हे परमेशानी शिवे! अट्ठारह पुराणों अथवा अंगों के सहित चारो वेद के श्रवण करने से, ब्रह्मरूपी गुरु को सुमेरुपर्वत के बराबर स्वर्णदान करने से, वेदपारग ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक सप्तद्वीपा वसुन्धरा दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उससे भी अधिक फल इसके श्रवण से प्राप्त होता है।।२०-२४।।

अस्य तन्त्रस्य चार्वङ्गि शृणोति पटलं यदि।
तत्फलात् कोटिगुणितं फलं स लभते ध्रुवम् ॥२५॥

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे चण्डिकाशङ्कर-
संवादे नवमः पटलः

हे सुन्दर अंगो वाली! इस तन्त्र के पटलों का जो श्रवण करते हैं, वे उक्त समस्त फलों की अपेक्षा करोड़ों गुणित फल को प्राप्त करते हैं।।२५।।

निर्वाण तन्त्र का नवम पटल समाप्त

दशमः पटलः

श्रीशङ्कर उवाच

ज्ञानपद्मस्योर्ध्वदेशे सहस्रदलपङ्कजम् ।
अधोवक्त्रं महावक्त्रं सुमेरोर्मूर्ध्नि संस्थितम् ।।१।।
यस्य पत्रं महेशानि सर्वशक्तिसमन्वितम् ।
शुक्लं रक्तं तथा पीतं कृष्णं हरितमेव च ।।२।।
नानाविचित्ररूपेण नानावर्णेन शोभितम् ।
शुक्लं क्षणे क्षणे रक्तं क्षणे पीतं सुशोभनम् ।।३।।

श्री शङ्कर कहते हैं—ज्ञान पद्म के ऊर्ध्व में सुमेरु के मस्तक के निम्न मुख में विशाल वदन सहस्रदल पद्म स्थित है। हे महेशानि! उसके पत्र समस्त शक्तियों से समन्वित हैं। वे शुक्ल-रक्त-पीत-कृष्ण तथा हरित वर्ण के हैं। अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र रूपों से तथा अनेक वर्णों से शोभित वे पत्र क्षण में शुक्ल, क्षण में रक्त तो क्षण में ही पीत रूप से शोभित होते हैं।।१-३।।

कस्मिन् क्षणे शुक्लवर्णं हरितं वर्णमुत्तमम् ।
चित्ररूपञ्च चार्वङ्गि धत्ते कस्मिन् क्षणे प्रिये ।।४।।
एवं नानाविधैर्देवि तत्पद्मं शोभितं सदा ।
तथैव गोलोकं धाम प्रतिपत्रे तथैव हि ।।५।।

हे प्रिये! वह कभी शुक्ल वर्ण का तो कभी उत्तम हरित वर्ण वाला हो जाता है। हे सुन्दर अंगो वाली! कभी तो वह चित्र-विचित्र रूप धारण कर लेता है।

हे देवि! इस प्रकार से वह पद्म वहुविध रूप से सदा शोभायमान है। गोलोक धाम जिस प्रकार की शोभा से सम्पन्न है, उसी प्रकार की शोभा से इस पद्म के प्रत्येक पत्र समन्वित हैं।।४-५।।

गोलोकस्य पतिस्तत्र भक्तिभावपरायणः ।
कैलासाधिपतिर्देवि ध्यानयोगं सदाभ्यसेत् ।।६।।
एवं ब्रह्मादयो देवा इन्द्राद्यास्त्रिदशेश्वराः ।
स्तुतिभक्तिपराः सर्वे दिव्यभावैः सदा स्थिताः ।।७।।

हे देवि! वहाँ गोलोकाधिपति तथा कैलासाधिपति भक्तिभाव का आश्रय लेकर सदैव ध्यानयोग का अभ्यास करते हैं; साथ ही ब्रह्मा आदि देवता एवं इन्द्रादि देवगण स्तुति तथा भक्ति से युक्त होकर सर्वदा दिव्य भाव से अवस्थान करते हैं।।६-७।।

लक्षं लक्षं महेशानि तथैव मुरलीधरः।
शतलक्षं शिवस्तत्र ब्रह्मा लक्षशतं प्रिये ।।८।।
प्रत्यहं परमेशानि ब्रह्माण्डा बहवो भवेत्।
तन्मध्ये स्थापयेद् ब्रह्मा तथैव कमलापतिम् ।।९।।

हे प्रिये महेशानि! वहाँ लाखों-लाख वंशीधारी, सौ लाख शिव तथा सौ लाख ब्रह्मा विराजित रहते हैं। हे परमेश्वरि! वहाँ नित्य असंख्य ब्रह्माण्डों की सृष्टि होती है और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा एवं कमलापति स्थित रहते हैं।।८-९।।

शिवं बहुविधाकारं तत्रैव स्थापनञ्चरेत्।
एवं हि परमेशानि नानाशक्तिं प्रविन्यसेत् ।।१०।।
प्रतिब्रह्माण्डमध्ये तु ब्रह्मादिदेवतात्रयम्।
नानाशक्तियुतं कृत्वा ब्रह्माण्डस्थापनञ्चरेत् ।।११।।

हे परमेशानि! इस प्रकार से वहाँ पर नाना प्रकार की आकृति वाले शिव तथा अनेक शक्तियाँ स्थापित हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा-विष्णु-शिव को अनेकानेक शक्तियों से युक्त करके वे ब्रह्माण्ड की स्थापना करते हैं।।१०-११।।

ब्रह्मपद्मे पृथिव्यान्तु वर्त्तन्ते मानुषादयः।
ते सर्वे देवि ब्रह्माण्डास्तन्मध्ये भुवनानि च ।।१२।।
पातालसप्तकं तत्र तत्रैव स्वर्गसप्तकम्।
एवं क्रमात् सर्वदेहे भुवनानि चतुर्दश ।।१३।।

ब्रह्मपद्म में पृथिवी पर मनुष्यादि जीव वर्त्तमान रहते हैं। हे देवि! ये सभी ब्रह्माण्ड हैं। इनमें चतुर्दश भुवन, सप्त पाताल एवं सप्त स्वर्ग अवस्थित हैं। इसी क्रम से सभी देह में चौदह भुवन विद्यमान हैं।।१२-१३।।

प्रतिदेहं परेशानि ब्रह्माण्डं नात्र संशयः।
कथितं बाह्यदेशस्य ब्रह्माण्डस्य च लक्षणम् ।।१४।।
यन्मध्ये वर्त्तते साक्षाद् भुवनानि चतुर्दश।
तदेव विग्रहं देवि महाब्रह्माण्डमध्यगम् ।।१५।।

हे परेशानि! यह सत्य है कि प्रत्येक देह में ब्रह्माण्ड विद्यमान है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। इस प्रकार तुमसे बाहर-स्थित ब्रह्माण्डों के लक्षण को मैंने कहा।

हे देवि! जिस ब्रह्माण्ड के मध्य में चतुर्दश भुवन साक्षात् अवस्थित हैं, वही है महाब्रह्माण्ड के अन्तर्गत उनका विग्रह।।१४-१५।।

एवं बहुविधं देवि तत्र ब्रह्माण्डके क्षितौ।
बृहद् ब्रह्माण्डे ये सर्वे तेऽपि जन्यशरीरिणः ।।१६।।
पृथिव्यां तेऽपि वर्त्तन्ते जन्तोराकारविग्रहाः।
महाब्रह्माण्डमध्ये तु बृहद् ब्रह्माण्डस्तिष्ठति ।।१७।।
तन्मध्ये जन्तवो देवि तन्मध्ये भुवनानि च।
सृष्टिमार्गेण भेदोऽस्ति स्थूलसूक्ष्मादिभेदतः ।।१८।।

हे देवि! उस ब्रह्माण्ड में अनेक पदार्थ स्थित हैं। बृहद् ब्रह्माण्ड में जो समस्त जन्य शरीरी वर्त्तमान हैं, वे ही जन्तुरूप आकार को अंगीकार करके अवस्थान करते हैं। महाब्रह्माण्ड के मध्य में बृहद् ब्रह्माण्ड अवस्थित है। हे देवि! इसमें जन्तु हैं, इसमें ही भुवनादि हैं। स्थूल-सूक्ष्मादि क्रम से सृष्टिमार्ग से इनमें भेद है।।१७-१८।।

महाब्रह्माण्डके यद् यद् प्रकारं परमेश्वरि।
तत्तत् सर्वं हि देवेशि बृहद् ब्रह्माण्डमध्यतः ।।१९।।
तद्रूपञ्च देहमध्ये भुवनानि चतुर्दश।
सृष्टिप्रकारब्रह्माण्डे भेदो नास्ति सुनिश्चितम् ।।२०।।

हे देवेशि! महाब्रह्माण्ड में जो जैसे है, बृहद् ब्रह्माण्ड में भी वह उसी प्रकार से विद्यमान हैं और उसी रूप में शरीर के मध्य में चौदह भुवन भी विद्यमान हैं। इस प्रकार यह निश्चित है कि सृष्टि के प्रकार और ब्रह्माण्ड में कोई भेद नहीं है।।१९-२०।।

स्थूलं क्षुद्रो हि चार्वङ्गि भेदकः परिचायकः।
पद्ममध्ये बीजकोषे भुवनानि चतुर्दश ।।२१।।
स्थानं बहुविधाकारं सर्वदेवस्य चाश्रयम्।
तन्मध्ये सत्यलोकञ्च महारुद्रस्य कारणम् ।।२२।।

हे सुन्दर अवयवों वाली! स्थूल तथा सूक्ष्म स्वरूप ही भेद के बोधक होते हैं। पद्मस्थ बीजकोष में चौदह भुवन अवस्थित हैं। वहीं पर सभी देवताओं के आश्रयस्वरूप अनेक प्रकार के स्थान भी वर्त्तमान हैं और उनके ही मध्य में महारुद्र के लिये सत्यलोक भी अवस्थित हैं।।२१-२२।।

दशकास्तेन स्वर्गेण निर्मितं चक्रपाणिना।
दिक्षु तोयमण्डलञ्च यथा पूर्णेन्दुमण्डलम् ।।२३।।
परितः परिजानीयान्मध्ये कल्पद्रुमं पुनः।
कल्पवृक्षस्य निकटे ज्योतिर्मण्डलमुत्तमम् ।।२४।।

चक्रपाणि विष्णु ने उस स्वर्ग के द्वारा ही दश दिशाओं का निर्माण किया है। इसके चारो ओर चन्द्रमण्डल के समान ही तोयमण्डल भी अवस्थित हैं। पुनः इसके मध्य में कल्पवृक्ष विद्यमान है और उस कल्पवृक्ष के निकट ही उत्तम ज्योतिर्मण्डल की अवस्थिति है।।२३-२४।।

उद्यदादित्यसङ्काशं चतुर्द्वारविभूषितम् ।
मन्दवायुसमायुक्तं गन्धधूपैरलङ्कृतम् ॥२५॥
तन्मध्ये वेदिका देवि रत्नसिंहासनं प्रिये ।
महाकाली परमात्मा चणकाकाररूपतः ॥२६॥
मायाच्छादितमात्मानं तन्मध्ये समभागतः ।
महारुद्रः स एवात्मा महाविष्णुः स एव हि ॥२७॥

यह उदयकालीन सूर्य के समान चार द्वारों से विभूषित है। वायु यहाँ धीरे-धीरे प्रवहमान है और यह स्थान गन्ध-धूप से अलंकृत भी है। उसके मध्य में एक वेदिका पर रत्नसिंहासन वर्त्तमान है, जिस पर चने के आकार वाली महाकाली तथा परमात्मा अवस्थित हैं। वे वहाँ पर माया द्वारा स्वयं को आच्छादित करके समभाग में विराजमान हैं। वह आत्मा ही महारुद्र है एवं वही महाविष्णु है।।२५-२७।।

महाब्रह्मा स एवात्मा नाममात्रविभेदकः ।
एकमूर्त्तिस्त्रयं नाम ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥२८॥

वह आत्मा ही महाब्रह्मा भी है, उन सबमें केवल नाममात्र का ही अन्तर है। इस प्रकार उस एक ही मूर्त्ति के ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वररूप तीन नाम है।।२८।।

नानाभावे मनो यस्य तस्य मोक्षो न विद्यते ।
ब्रह्माण्डास्तत्र जायन्ते लक्षं लक्षं सुलोचने ॥२९॥
तत्र ब्रह्मा तत्र हरिस्तत्र रुद्रः प्रविन्यसेत् ।
एवं ब्रह्माण्डनिर्माणं कृत्वा विष्णुः सनातनः ॥३०॥
सजीवमूर्त्तिं निर्माय यथा जन्तोश्च विग्रहम् ।
एवं ब्रह्माण्डं विविधं नित्यं सृजति निर्गुणः ॥३१॥

हे सुलोचनें! जिसके मन में नानात्व है, उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। वहाँ लाखो-लाख ब्रह्माण्डों में ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र विन्यस्त हैं। सनातन विष्णु निर्गुण होते हुये भी इस प्रकार के ब्रह्माण्ड का निर्माण करके सजीव मूर्त्ति तथा जन्तुओं की आकृति की रचना करके नित्य विविध ब्रह्माण्डों का सृजन करते रहते हैं।।२९-३१।।

निर्गुणं बिन्दुरूपश्च सिद्धिकारणमेव हि ।
केचिद्वदन्ति स ब्रह्मा कैश्चिद् विष्णुः प्रकथ्यते ॥३२॥

केचिद् रुद्रो महापूर्व एको देवो निरञ्जनः ।
आद्याशक्तियुतो देवश्चणकाकाररूपकः ॥३३॥

निर्गुण उपासना के क्षेत्र में बिन्दुरूप की उपासना से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है और उसे ही कोई उसे ब्रह्मा, कोई रुद्र, कोई विष्णु के नाम से अभिहित करते हैं; लेकिन वास्तव में वही देव सबके पूर्ववर्ती, एक, निरंजन तथा आद्या शक्ति से युक्त होकर चने के रूप में विराजमान रहते हैं।।३२-३३।।

इन्द्रजालस्य दीपाभः चन्द्रसूर्याग्निरूपकः ।
महाक्षोभी निर्विकारः सत्यं सत्यं सनातनः ॥३४॥
सत्यलोके बीजकोषे चिन्तामणिगृहे शुभे ।
ध्यायेन्निरञ्जनं देवि रत्नसिंहासनोपरि ॥३५॥

वे देव इन्द्रजाल के दीप की आभास्वरूप, चन्द्र-सूर्य-अग्निस्वरूप, महाक्षोभी, विकाररहित, सत्य तथा सनातन हैं; यह पूर्णत: सत्य है। हे देवि! सत्यलोक के बीजकोषस्थ मंगलरूप चिन्तामणि गृह में रत्नसिंहासन पर आसीन निरंजन स्वरूप वाले आत्मा का ध्यान करना चाहिये।।३४-३५।।

तस्यान्तिके निजगुरुं पूजाध्यानपरायणम् ।
सकान्तं पूजयेद्देवं रजताचलसोदरम् ॥३६॥
सुरक्तां चारुवदनां सुप्रकाशस्वरूपिणीम् ।
एवं कान्तायुतं देवं स्वमूर्ध्निस्थं विचिन्तयेत् ॥३७॥

उस आत्मा के पास में ही पूजा-ध्यान में निमग्न, रजत पर्वत के समान शुभ्र, शक्तियुक्त, देवतारूप अपने गुरु का पूजन करना चाहिये। उन गुरु की शक्ति रक्त वर्ण वाली, सुन्दर मुख वाली एवं सुन्दर प्रकाशस्वरूप होती है। इस प्रकार के शक्ति से युक्त गुरुदेव का चिन्तन अपने मस्तक पर स्थितरूप में करना चाहिये।।३६-३७।।

यथा दर्पणगर्भे तु परिपश्यन्ति पर्वतम् ।
सहस्रारे महापद्मे तथा देवं विचिन्तयेत् ॥३८॥
परं ब्रह्मालयं ह्येतत् परं मोक्षालयं प्रिये ।
निर्गुणस्यालयं साक्षाद् महाकाल्यालयं शिवे ॥३९॥

जिस प्रकार दर्पण के भीतर पर्वत को देखा जाता है, उसी प्रकार से उस सहस्रदल महापद्म में गुरुदेव का चिन्तन करना चाहिये। हे प्रिये शिवे! यही साक्षात् परब्रह्म का आलय, परम मोक्ष का आलय, निर्गुण का आलय तथा साक्षात् महाकालिका का भी आलय है।।३८-३९।।

तथैव वर्त्तते नित्यो निराकारश्च निश्चलः।
यस्य रूपं परानन्दं परापरजगत्पतिम् ॥४०॥
नित्यानन्दपरा देवी काली कलिप्रकाशिनी।
आद्याशक्तिर्महाकाली देवनिर्माणकारिणी ॥४१॥

इसी प्रकार यहीं पर नित्य, निराकार, निश्चल परमपुरुष अवस्थित रहते हैं। उनका स्वरूप है—परानन्द, परापर जगत्पति रूप। महाकाली नित्य आनन्दमयी एवं कलि की प्रकाशिका हैं। वे महाकाली ही आद्या-शक्ति हैं तथा देवगणों का निर्माण करने वाली भी हैं।।४०-४१।।

जायते च क्षितौ ब्रह्मा यस्यां पृथ्व्यां प्रलीयते।
तोयाच्च बुद्बुदं जातं यथा तोये विलीयते ॥४२॥
जलदे तडिदुत्पन्ना लीयते च यथा घने।
तथा ब्रह्मादयो देवाः कालिकायां प्रजायते।
तथा प्रलयकाले तु पुनस्तस्यां प्रलीयते ॥४३॥

इसके आकाश में ही ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं तथा अन्त में इसकी पृथिवी में ही विलीन हो जाते हैं; ठीक उसी प्रकार जैसे जल से बुलबुला उठकर पुनः उसी में लीन हो जाता है। जिस प्रकार विद्युत् मेघ से उत्पन्न होकर पुनः उसी मेघ में विलीन हो जाती है, वैसे ही ब्रह्मादि देवता भी उस कालिका से ही उत्पन्न होते हैं एवं पुनः प्रलयकाल में उस कालिका में ही विलीन हो जाते हैं।।४२-४३।।

शक्तिज्ञानं विना देवि मुक्तिर्हास्याय कल्पते।
एकांशेन भवेद् ब्रह्मा एकांशेन जनार्दनः।
एकांशेन भवेच्छम्भुः कालिकायाः सुलोचने ॥४४॥
आधारा सा महाकाली नद्यादीनां समुद्रवत्।
गोष्पदे च तथा तोयं ब्रह्माद्या देवतास्तथा ॥४५॥

हे देवी सुनयने! शक्तिज्ञान के विना मुक्ति की इच्छा करना तो हास्यास्पद चेष्टा के ही समान है। देवी कालिका के ही एक अंश से ब्रह्मा, एक अंश से जनार्दन तथा एक अंश से शम्भु का आविर्भाव होता है। जैसे सागर नदियों आदि का आधार है, वैसे ही महाकाली भी ब्रह्मादि देवताओं के लिये आधारस्वरूप हैं। ब्रह्मादि देवता ठीक वैसे ही हैं, जैसे गाय के खुर से निर्मित गड्ढे में भरा जल।।४४-४५।।

गोष्पदं किं न जानीयात् समुद्रस्य जलं शिवे।
तेन ब्रह्मा न जानाति विष्णुः किं वेत्ति शङ्करः ॥४६॥

सृष्टिकर्त्ता यदा काल्यां तन्यन्ते च सुरादयः ।
तदा प्रलयकाले तु पुनस्तस्यां प्रलीयते ।।४७।।
अतो निर्वाणदा काली पुरुषः स्वर्गदायकः ।
दक्षिणस्यां दिशि स्थाने संस्थितश्च रवेः सुतः ।।४८।।

हे शिवे! विज्ञजन क्या यह नहीं जानते कि गोष्पद का जल भी समुद्रजल का ही एक रूप होता है? ठीक इसी प्रकार ब्रह्मा-विष्णु तथा शंकर भी महाकाली के ही स्वरूप होते हैं। सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय को करने वाले ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश जिस प्रकार उस महाकाली से विस्तार को प्राप्त करते हैं, वैसे ही वे प्रलयकाल में पुनः उनमें ही लयीभूत भी हो जाते हैं। अतः काली ही निर्वाण प्रदान करने वाली हैं तथा पुरुष (शिव) केवल स्वर्ग प्रदान करने वाले हैं। इसके दक्षिण दिशा में सूर्यपुत्र यम का वासस्थान है।।४६-४८।।

कालीनाम्ना पलायेत भीतियुक्तः समन्ततः ।
ततः सा दक्षिणा नाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते ।।४९।।
पुरुषो दक्षिणः प्रोक्तो वामा शक्तिर्निगद्यते ।
वामाया दक्षिणा जिह्वा महामोक्षप्रदायिनी ।।५०।।
अतः सा दक्षिणा नाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते ।
सेश्वरी या महाविद्या कालिका जगदम्बिका ।।५१।।

अतः काली का नाम सुनते ही वे यम भयभीत होकर चारो दिशाओं में पलायन कर जाते हैं। इसीलिये तीनों लोकों में काली को 'दक्षिणाकाली' के नाम से जाना जाता है। पुरुष को दक्षिण तथा शक्ति को वामा कहा गया है। उस वामा की दक्षिण जिह्वा महामोक्ष प्रदान करने वाली है। इसीलिये वे तीनों लोकों में 'दक्षिणा' इस अभिधान से अभिहित हैं। वह महाविद्या जगदम्बिका कालिका ही ईश्वरी हैं।।४९-५१।।

साकाररूपा सा देवी चणकाकाररूपिणी ।
हस्तपादादिरहिता चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।।५२।।
तस्याः स्थानं हि कथितं सत्यलोकं वरानने ।
यत्स्थानं सर्वदेवस्य प्रार्थनीयं सदानघे ।
तस्य स्थानस्य माहात्म्यं किं मया कथ्यतेऽधुना ।।५३।।

वह देवी चणकाकार रूप में साकार स्वरूप वाली है; साथ ही हाथ-पैर अवयवों से रहित होकर चन्द्र, सूर्य एवं अग्निस्वरूप वाली है।

हे निष्पाप शोमन मुख वाली! उन देवी का आवास-स्थान सत्यलोक कहा गया

है और वह सत्यलोक ही समस्त देवताओं का काम्य होता है। अतः इस समय उस स्थान का माहात्म्य मैं कैसे कह सकता हूँ?।।५२-५३।।

सहस्रदलपद्मस्य चैकपत्रे सुलोचने।
सहस्रगोलोकं धाम अतो वक्तुं न शक्यते।।५४।।
जन्मान्तरसहस्रेण जिह्वाकोटिशतेन च।
तद्वक्तुं न हि शक्नोमि एकपत्रस्य शोभनम्।।५५।।

हे सुलोचने! उस सहस्र दल वाले पद्म के एक-एक पत्रों में सहस्रों गोलोक स्थित हैं। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता। उसके एक-एक पत्र की शोभा का वर्णन सहस्र जन्मों में सैकड़ों करोड़ जिह्वाओं से भी करने में मैं समर्थ नहीं हूँ।।५४-५५।।

अतस्त्वं हि वरारोहे विरता भव पार्वति।
किञ्जल्कमध्ये सा देवी किं वक्तुं शक्यते मया।।५६।।
तन्मध्ये कर्णिकां देवि तन्मध्ये बीजकोषकम्।
बीजकोषस्य मध्ये तु सुधासागरमुत्तमम्।।५७।।

हे वरारोहे! हे पार्वति! अतः तुम इस प्रश्न को पूछने से विरत हो जाओ। वे देवी उस पद्म के किंजल्क (कोष) में ही स्थित रहती हैं; अतः उनकी बात मैं कैसे कह सकता हूँ? उसके मध्य में कर्णिका है और उसके भी मध्य में बीजकोष है। उस बीजकोष के मध्य में उत्तम सुधासागर स्थित है।।५६-५७।।

लक्षयोजनविस्तारं सुशुभं तोयमण्डलम्।
तन्मध्ये तु मणिद्वीपं सहस्रयोजनं शिवे।।५८।।
परितः पारिजातानि कदम्बवनमुत्तमम्।
मध्ये कल्पद्रुमं तत्र ज्योतिर्मन्दिरमुत्तमम्।।५९।।
चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारभूषितम्।
मन्दवायुसमायुक्तं गन्धधूपसमन्वितम्।।६०।।

हे शिवे! वहाँ लाखों योजन विस्तर वाला अत्यन्त सुन्दर तोयमण्डल स्थित है, जिसके मध्य में सहस्र योजन विस्तार वाला मणिद्वीप विद्यमान है। उस मणिद्वीप के चारो ओर पारिजात वृक्ष एवं कदम्ब वृक्ष का उत्तम वन विद्यमान है, जिसके मध्य में कल्पवृक्ष है और उस कल्पवृक्ष के नीचे ही उत्तम ज्योतिमन्दिर अवस्थित है। वह मन्दिर स्वर्ण-निर्मित प्राचीर से विभूषित एवं चार द्वारों से युक्त है। गन्ध एवं धूप से समन्वित मन्द-मन्द वायु वहाँ सदा प्रवहमान रहती है।।५८-६०।।

देवकन्यासहस्राणि परिचर्यापरायणाः।
तन्मध्ये वेदिकां देवि पञ्चाशदक्षरात्मिकाम्।।६१।।

तस्योपरि महेशानि रत्नसिहासनं शिवे।
महाकाली महारुद्रश्चणकाकाररूपकः ।।६२।।
इन्द्रजालस्य दीपाभं महाज्योतिः सनातनम्।
इति ते कथितं कान्ते सप्तस्वर्गं क्रमेण हि ।।६३।।

हे देवि! सहस्रों देवकन्यायें वहाँ सेवारत रहती हैं। उसके मध्य में एक वेदिका विद्यमान है, जिसपर पञ्चाशद् वर्णरूपिणी देवी विराजमान हैं। हे महेशानी शिवे! उस वेदिका के ऊपर रत्नसिंहासन विद्यमान है, जिसके ऊपर चणकाकार रूप में महाकाली तथा महारुद्र विराजित हैं। वहाँ ऐन्द्रजालिक दीप के समान महाज्योति सदा-सर्वदा प्रकाशित रहती है। हे प्रिये! इस प्रकार मैंने क्रमशः सात स्वर्गों का वर्णन तुम्हारे समक्ष किया।।६१-६३।।

श्रुत्वा गोपय यत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन।
अतिस्नेहेन देवेशि तव स्थाने प्रकाशितम्।
संक्षेपेण मयाप्युक्तं विस्तारे न हि शक्यते ।।६४।।

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरचण्डिकासंवादे
सत्यलोककथनं नाम दशमः पटलः

इसे सुनकर तुम यत्नपूर्वक गुप्त रखना, कभी भी कहीं भी प्रकाशित मत करना। हे देवाधीश्वरि! मैंने अत्यन्त स्नेह के कारण तुम्हारे समक्ष इसे प्रकाशित किया है; साथ ही इसे मैंने संक्षेप में ही कहा हैं; क्योंकि विस्तार से इसका विवेचन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ।।६४।।

निर्वाणतन्त्र का दशम पटल समाप्त

एकादशः पटलः

श्रीचण्डिका उवाच

त्वत्प्रसादान्महादेव पवित्राहं न चान्यथा।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम्॥१॥

श्री चण्डिका कहती हैं—हे महादेव! आपकी कृपा से आज मैं पवित्र हो गई; यह सत्य है। अब इस समय मैं अत्यन्त दुर्लभ तत्त्वज्ञान को सुनना चाहती हूँ।।१।।

श्रीशङ्कर उवाच

तत्त्वज्ञानादिकथने न शक्यं मम मानसम्।
एतत् प्रशंसाश्रवणे विरता भव सुन्दरि॥२॥
येन ज्ञानप्रसादेन विष्णुः सर्वगुणाश्रयः।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि ब्रह्मा लोकपितामहः॥३॥
तत्त्वज्ञानप्रसादेन शम्भुः संहारकारकः।
अन्ये मुक्ताश्च ये सर्वे तेऽपि तत्त्वप्रसादतः॥४॥

श्रीशङ्कर कहते हैं—तत्त्वज्ञानादि को कहने में मेरा मन समर्थ नहीं है; अतः हे भवसुन्दरि! तुम इसकी प्रशंसा सुनने से विरत हो जाओ। जिस तत्त्वज्ञान के प्रभाव से ही विष्णु समस्त गुणों के आश्रय हैं, ब्रह्मा लोकपितामह हैं तथा शम्भु संहार करने वाले होते हैं; साथ ही इनके अन्य भी जो लोग उसी तत्त्वज्ञान के प्रभाव से मुक्त हो सके हैं, वह भी इसी तत्त्व की ही कृपा है।।२-४।।

तत्त्वज्ञानं परेशानि कथं वा कथ्यते मया।
विरता भव देवेशि न वै पृच्छ पुनः पुनः॥५॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा शाङ्करी वाक्यमब्रवीत्।
यदि तत्त्वं महादेव न मे कथयसि विभो।
प्राणत्यागं करिष्यामि पुरतस्ते न संशयः॥६॥

अत एव हे परमेशानि! उस तत्तवज्ञान का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ? हे देवेशि! अतः तुम बार-बार प्रश्न न करके इस जिज्ञासा से विरत हो जाओ। महादेव के इस प्रकार के वचन को सुनकर शांकरी ने कहा कि हे विभो! महादेव! मेरे समक्ष

यदि आप तत्त्वोपदेश नहीं करेंगे तो मैं आपके समक्ष ही अपना प्राणत्याग कर दूँगी, इसमें कोई संशय नहीं है।।५-६।।

श्रीशङ्कर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तत्त्वं परमदुर्लभम्।
श्रुत्वा गोपय यत्नेन स्वयोनिरिव सुन्दरि ।।७।।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रां मैथुनमेव च।
पञ्चतत्त्वमिदं देवि निर्वाणमुक्तिहेतवे ।।८।।

श्रीशङ्कर कहते हैं—हे सुन्दरि! सुनो; मैं अत्यन्त दुर्लभ तत्त्वज्ञान को कहता हूँ। तुम इसे सुन कर भी अपनी योनि के समान ही यत्नपूर्वक गुप्त रखना। हे देवि! मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन—ये पाँच तत्त्व निर्वाण एवं मुक्ति के हेतु हैं।।७-८।।

अष्टैश्वर्यं परं मोक्षं मद्यपानेन शैलजे।
मांसभक्षणमात्रेण साक्षान्नारायणो भवेत् ।।९।।
मुद्रासेवनमात्रेण भूपूज्यो विष्णुरूपधृक्।
मैथुनेन महायोगी मम तुल्यो न संशयः ।।१०।।
तन्त्रान्तरे तु देवेशि मयैव कथितं पुरा।
माहात्म्यं चास्य धर्मस्य पुरैव कथितं मया ।।११।।

हे शैलजे! मद्यपान से आठो ऐश्वर्य तथा परममोक्ष की प्राप्ति होती है। मांसभक्षण करने मात्र से ही जीव साक्षात् नारायणस्वरूप हो जाता है। मुद्रा के सेवन करने मात्र से जीव विष्णु का रूप धारण करके पृथिवी पर पूज्य हो जाता है एवं मैथुन से महायोगी होकर वह साक्षात् मेरे समान हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे देवेशि! अन्य तन्त्रों में मैंने इसका विवेचन किया है एवं पूर्व में तुमसे इस धर्म के माहात्म्य का भी कथन किया है।।९-११।।

तत्त्वज्ञानमिदं कान्ते निर्वाणमुक्तिकारणम्।
एकत्र पञ्चतत्त्वन्तु यत्रैव मिलितं भवेत्।
तत्रैव तु प्रगच्छन्ति नरा मत्सदृशाः सदा ।।१२।।

हे प्रिये! यह तत्त्वज्ञान निर्वाण मुक्ति का कारणस्वरूप है। जिस एक ही स्थान पर इन पाँचो तत्त्वों का मिलन होता है, वहीं पर मेरे समान होकर सभी मनुष्य सदा गमन करते हैं।।१२।।

सा नारी कालिकारूपा मृते तस्यां प्रलीयते।
ये नराः साधुरूपाश्च तत्त्वज्ञानपरायणाः।
जीवन्मुक्ताश्च ते प्रोक्ता ब्रह्मरूपा न चान्यथा ।।१३।।

कालिकारूपा वह नारी भी मृत्यु के पश्चात् वहीं पर लीन हो जाती है। तत्त्वज्ञान-परायण जो मनुष्य साधुरूपेण अवस्थान करते हैं, वे जीवन्मुक्त होकर साक्षात् ब्रह्म-स्वरूप हो जाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है।।१३।।

सायुज्यादिमहामोक्षं नियुक्तं क्षत्रियादिषु।
ब्राह्मणः परमेशानि यदि तत्त्वपरायणः ।।१४।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं परे तत्त्वे प्रलीयते।
यथा तोयं तोयमध्ये लीयते परमेश्वरि।
तथैव तत्त्वसेवायां लीयते परमात्मनि ।।१५।।
इति ते कथितं कान्ते तत्त्वज्ञानं हि मोक्षदम्।
येन ज्ञानप्रसादेन मोक्षसिद्धिर्न संशयः ।।१६।।

क्षत्रियादि में सायुज्यादि महामोक्ष का निरूपण किया गया है; किन्तु हे परमेशानि! यदि ब्राह्मण तत्त्वपरायण होते हैं, तो वे परम तत्त्व में विलीन हो जाते हैं; यह सर्वथा सत्य है। हे परेश्वरि! जैसे जल में जल लीन हो जाता है, वैसे ही पञ्चतत्त्व का सेवन करने से साधक परमात्मा में लीन हो जाता है। हे प्रिये! इस प्रकार तुमसे मोक्षदायक तत्त्वज्ञान का वर्णन मैंने किया। इसके प्रसाद से निश्चित रूप से मोक्ष की सिद्धि होती है। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।।१४-१६।।

क्षितिं विना यथा नास्ति संस्थितेः कारणं सदा।
तोयं विना यथा नास्ति पिपासानाशकारणम् ।।१७।।
तमोहन्ता यथा नास्ति भास्करेण विना प्रिये।
विना वह्निप्रयोगेन यथा किञ्चिन्न दृश्यते ।।१८।।
विना तन्त्रेण देवेशि सुधावृष्टिर्न जायते।
मातृगर्भं विना कान्ते उत्पत्तिर्न यथा भवेत् ।।१९।।
तत्त्वज्ञानं विना देवि तथा मुक्तिर्न जायते।
अत एव महेशानि गोपनं कुरु यत्नतः ।।२०।।

हे देवेशि! जिस प्रकार आकाश के विना संस्थिति का अन्य कोई उपाय नहीं है, जल के विना पिपासा-शान्ति का अन्य कोई साधन नहीं है, सूर्य के विना अन्य कोई अन्धकार का विनाशक नहीं है, अग्नि के प्रयोग के विना कुछ भी देखा नहीं जा सकता, तन्त्र के विना अमृतवर्षा नहीं हो सकती, माता के गर्भ के विना उत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार तत्त्वज्ञान के अभाव में मुक्ति भी नहीं मिलती। इसलिये हे महेशानि! इसे तुम यत्नपूर्वक गोपनीय रखना।।१७-२०।।

दिव्यभावयुतानाञ्च तत्त्वज्ञानं सदा भवेत् ।
वीरभावयुतानां वै तत्त्वं सेव्यं सदानघे ॥२१॥
न पशोरालये कुर्यान्न पशोर्ज्ञानगोचरे ।
अन्यथा पक्षिकीटस्य दर्शनं न हि कारयेत् ॥२२॥
सिद्धेर्वर्त्म शृणु प्राज्ञे यत्कृत्वा सिद्धिमाप्नुयात् ।

दिव्य भाव से युक्त साधक को ही सर्वदा तत्त्वज्ञान होता है। हे निष्पापे! वीरभावापन्न साधकों के लिये पञ्चतत्त्व निश्चित रूप से सेवनीय है। पशु (पश्वाचारी) के घर में, उसकी जानकारी में, जहाँ पक्षी-कीट आदि का निवास हो, वहाँ कभी भी पञ्चतत्त्व का अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। हे प्राज्ञे! अब इसकी सिद्धि के मार्ग को सुनो; जिसके करने से सिद्धि प्राप्त होती है।।२१-२२।।

एकां शक्तिं समानीय एकैकः साधकः सदा ॥२३॥
पूजयेद् बहुयत्नेन पञ्चतत्त्वेन कौलिकः ।
एवं कृत्वा लभेत् सिद्धिं नान्यस्य दृष्टिगोचरे ॥२४॥
श्रीचक्रपूजा यत्रैव तत्रैव ध्यानसिद्धये ।
सिद्धिर्न जायते तत्र कदाचिदन्यसन्निधौ ॥२५॥
तत्रैव कामनासिद्धिर्यत्र चक्रं प्रपूजयेत् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं श्रीचक्रपूजनाल्लभेत् ॥२६॥

एक-एक कौल साधक को एक-एक शक्ति का आनयन करके उस शक्ति की पूजा यत्नपूर्वक गोपनीय रूप से पञ्चतत्त्व द्वारा करनी चाहिये। ऐसा करने से उसे सिद्धि की प्राप्ति होती है। जहाँ श्रीचक्र की पूजा होती हो, वहीं पर ध्यानसिद्धि-हेतु अनुष्ठान करना चाहिये। कभी भी अन्य (कौल साधक के अतिरिक्त) के सामने यह क्रिया नहीं करनी चाहिये; अन्यथा सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती। जहाँ श्रीचक्र-पूजन होता है, वहीं पर कामनाओं की सिद्धि मिलती है। श्रीचक्र के पूजन से आयु, आरोग्य एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।।२३-२६।।

कीर्त्तिवृद्धिर्यशोवृद्धिर्मुक्तिभागी न संशयः ।
वाञ्छासिद्धिर्ज्ञानसिद्धिर्देव्याः प्रीतिश्च जायते ।
श्रीचक्रपूजां यः कुर्यात् स एव शम्भुरव्ययः ॥२७॥

जो श्रीचक्र के पूजक होते हैं, उनकी कीर्त्ति एवं यश की वृद्धि होती है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। उनको ही वाञ्छासिद्धि एवं ज्ञानसिद्धि प्राप्त होने के साथ-साथ देवता की प्रीति भी प्राप्त होती है। जो श्रीचक्र का पूजन करता है, वह अव्यय शिवस्वरूप ही होता है।।२७।।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
इष्ट्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं कौलिकार्चने ॥२८॥
वापीकूपतडागादि दत्त्वा यत् फलमाप्नुयात् ।
तत्फलात् कोटिगुणितं यदि चक्रं प्रपूजयेत् ॥२९॥
तदन्नं मेरुवत्तुल्यं बिन्दुः सिन्धुसमोपमः ।
पुष्पञ्च मेरुसदृशं यदि चक्रं प्रपूजयेत् ॥३०॥

एक हजार अश्वमेध एवं एक सौ वाजपेय यज्ञों के अनुष्ठान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसी फल की प्राप्ति कौलिक पूजा से भी होती है। वापी-कूप-तड़ाग आदि का दान करने से जो फल प्राप्त होता है, उससे करोड़ों गुणा अधिक फल श्रीचक्र के पूजन से प्राप्त होता है। जो श्रीचक्र की पूजा करते हैं, उनके द्वारा दिया गया अन्न सुमेरु के बरावर, उनके द्वारा प्रदत्त एक बून्द भी जल समुद्र के बरावर एवं पुष्प भी सुमेरु पर्वत के बराबर हो जाता है।।२८-३०।।

तन्मध्ये वर्त्तते देवि यदि व्याधियुतो नरः ।
शिवब्रह्मा प्रपूज्यो हि भ्रान्तिं तत्र विवर्जयेत् ॥३१॥
सूर्यस्य प्रतिबिम्बं यत्तत्तोयं परिपश्यति ।
गङ्गातोये तथा सूर्यो हीनतोये तथा पुनः ॥३२॥

जहाँ श्रीचक्र का पूजन किया जाता है, उसकी परिधि में यदि व्याधिग्रस्त व्यक्ति भी आ जाता है, तो वह भी व्रह्मा तथा शिव के समान पूज्य हो जाता है; इस विषय में किसी प्रकार की भ्रान्ति का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। जिस प्रकार उत्तम अथवा अधम जल में समान रूप से सूर्य का प्रतिविम्ब दृष्टिगोचर होता है, ठीक उसी प्रकार श्रीचक्र-पूजन के स्थान पर व्याधिग्रस्त व्यक्ति भी व्रह्मा तथा शिव का ही प्रतिबिम्ब-हो जाता है।।३१-३२।।

सूर्यस्य दूषणं नास्ति सूर्यैकः परितिष्ठति ।
तथैव परमेशानि साधके नास्ति दूषणम् ॥३३॥

जिस प्रकार अधम जल में प्रतिविम्व के दृगोचर होने से सूर्य में कोई दोष नहीं होता; अपितु वह तो यथावत् ही बना रहता है, उसी प्रकार साधक में भी किसी प्रकार को दोष नहीं होता।।३३।।

अत एव महेशानि दूषणं नास्ति रेतसि ।
रेतः पवित्रं परमं शक्तिर्मोक्षस्य कारणम् ॥३४॥
पूजाहीना च या शक्तिर्जपहीना च या पुनः ।
धृत्वा साधकरेतश्च सा नारी कालिका स्वयम् ॥३५॥

मन्त्र के धारण करने से ही साधक की आत्मा शोभन हो जाती है। अतएव हे

महेशानि! साधक के शुक्र में कोई दोष नहीं होता। रेतस् अत्यन्त पवित्र होता है एवं शक्ति मोक्ष का कारण होती है। पूजा अथवा जप से रहित होने पर भी शक्ति साधक के शुक्र को धारण करने स्वयं कालिकातुल्य नारी प्रतिभात होती है।।३४-३५।।

भ्रान्तिरत्र न कर्त्तव्या यदि मुक्तिं समिच्छति।
या नारी भ्रान्तिसंयुक्ता आगता चक्रमण्डले।
सप्तजन्मनि सा नारी चाण्डाली पतिवर्जिता ॥३६॥
एवं विरूपां यां नारीमवज्ञां कुरुते यदि।
धनपुत्रैर्वर्जितश्च स चाण्डालो न चान्यथा ॥३७॥

जो मुक्ति की इच्छा करते हैं, उन्हें इस सम्बन्ध में कोई भ्रान्ति नहीं करनी चाहिये। जो नारी भ्रान्तियुक्त होकर चक्रमण्डल में आती है, वह सात जन्मों तक पति से रहित होकर चाण्डालिनी होती है। इस प्रकार की कुत्सिता नारी की भी यदि कोई अवज्ञा करता है, तो वह धन एवं पुत्र से हीन होकर साक्षात् चाण्डालस्वरूप होता है, इसमें कोई संशय नहीं है।।३६-३७।।

इति ते कथितं कान्ते तत्त्वज्ञानं विमोक्षणम्।
येषां देहे महेशानि तत्त्वज्ञानं मयोदितम् ॥३८॥
ते पुनर्जननीगर्भे न विशन्ति कदाचन।
जीवन्मुक्ताश्च ते प्रोक्ताः शिवरूपाश्च ते नराः ॥३९॥

हे प्रिये! इस प्रकार मैंने तत्त्वज्ञान के अनुष्ठान से विमुक्ति के स्वरूप का वर्णन किया। हे महेशानि! जिनके समक्ष भी मैंने इस तत्त्वज्ञान का वर्णन किया है, वे कभी भी माता के गर्भ में प्रवेश नहीं करते; अपितु वे सभी जीवन्मुक्त तथा शिवस्वरूप हो जाते हैं।।३८-३९।।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कौलिकस्य च लक्षणम्।
यस्मिन् देशे तु यद्द्वारो निर्दिष्टो मन्त्रसाधने ॥४०॥
तद्द्वारेण विशिष्टो यः कौलिकः स च कीर्त्तितः।
शैवे शाक्ते गाणपे च सौरे चान्द्रे सुलोचने।
तत्त्वज्ञानामिदं प्रोक्तं वैष्णवे शृणु यत्नतः ॥४१॥

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरचण्डिकासंवादे
तत्त्वविवरणं नाम एकादशः पटलः

हे देवि! अब मुझसे कौलिक का लक्षण सुनो। जिस देश में मन्त्रसाधना का जो पथ निर्दिष्ट है, उसी के अनुसार जो साधना करते हैं, वे ही यथार्थ कौलिक होते हैं। हे सुनयने! शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर तथा चान्द्रमार्ग में यही तत्त्वज्ञान है। अब यत्नपूर्वक वैष्णव-साधना के तत्त्वज्ञान का श्रवण करो।।४०-४१।।

निर्वाणतन्त्र का एकादश पटल समाप्त

द्वादशः पटलः

श्रीचण्डिका उवाच

शृणु नाथ परानन्द मम प्राणेश्वर प्रभो।
वैष्णवस्य यथा तत्त्वं तन्मे ब्रूहि जगत्पते॥१॥

श्रीचण्डिका कहती हैं—हे नाथ। परानन्द! मेरे प्राणेश्वर! प्रभो! जगत्पते! वैष्णवों का तत्व जिस प्रकार का होता है, उसे मुझसे कहें।।१।।

श्रीशिव उवाच

शृणु तत्त्वं वरारोहे वैष्णवस्य त्रिलोचने।
गुरुतत्त्वं मन्त्रतत्त्वं वर्णतत्त्वं सुरेश्वरि।
देवतत्त्वं ध्यानतत्त्वं पञ्चतत्त्वं वरानने॥२॥

श्री शिव कहते हैं—हे वरारोहे त्रिनयने! वैष्णव तत्त्व का श्रवण करो! हे सुरेश्वरि गुरुतत्त्व, मन्त्रतत्त्व, वर्णतत्त्व, देवतत्त्व तथा ध्यानतत्त्व—ये ही वैष्णवों के पञ्चतत्त्व होते हैं।।२।।

तत्रादौ श्रीगुरोस्तत्त्वं स्नेहाद्वक्ष्यामि पार्वति।
सतैलं वर्त्तिकायुक्तं देहस्थब्रह्मतेजसम्।
गुरुणा मन्त्रदानेन तत् सूत्रं दीपितं भवेत्॥३॥

हे पार्वति! तुम्हारे प्रति स्नेहवशात् सबसे पहले गुरुतत्त्व को मैं कहता हूँ। यह शरीर तैल तथा वर्त्तिका से युक्त ब्रह्मतेजःस्वरूप दीप के समान है। मन्त्रदान द्वारा गुरु इसकी वर्तिका को दीपित करता है।।३।।

देवतायाः शरीरं हि बीजादुत्पद्यते ध्रुवम्।
अत एव हि तस्यात्मा देवरूपो न संशयः॥४॥
ईश्वरस्य तु यद्वीर्यं तदेव अक्षरात्मकम्।
तेन वर्णात्मकं देहे जन्तोरेव न संशयः॥५॥

बीज के द्वारा निश्चित रूप से देवता का शरीर उत्पन्न होता है। अतः उसकी आत्मा देवस्वरूप होती है, इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। ईश्वर की जो शक्ति होती है, वही अक्षरात्मक है। इसलिये निःसन्दिग्ध रूप से प्राणी का शरीर भी वर्णात्मक होता है।।४-५।।

मन्त्रवर्णे च ते वर्णा लीयन्ते परमेश्वरि।
वर्णतत्त्वमिदं देवि मम सर्वं स्वयं भवेत्।।६।।
स्वयं देवो न चान्यस्मिन् निर्मलो देवरूपकः।
सर्वत्र देवतां ध्यायेत् तृणगुल्मलतादिषु।।७।।

हे देवी परमेश्वरि! वे वर्णसमूह मन्त्रवर्ण में लीन हो जाते हैं। यही वर्णतत्त्व कहलाता है। यही हमारा सर्वस्व है। स्वयं को ही अतीव निर्मल देवस्वरूप जानना चाहिये; देवता का अन्य कोई रूप नहीं है। तृण-गुल्म-लता आदि सभी में देवता का ध्यान करना चाहिये।।६-७।।

ध्यानेन लभते सर्वं ध्यानेन विष्णुरूपकम्।
ध्यानेन सिद्धिमाप्नोति विना ध्यानैर्न सिध्यति।।८।।
इति ते कथितं कान्ते वैष्णवस्य सुरेश्वरि।
यज्ज्ञानादमृतत्वञ्च विष्णुरूपो भवेन्नरः।।९।।

ध्यान के द्वारा सब कुछ प्राप्त होता है। ध्यान से विष्णु का सारूप्य प्राप्त होता है एवं ध्यान द्वारा ही सिद्धि की प्राप्ति होती है। विना ध्यान के सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती। हे सुरेश्वरि! इस प्रकार तुमसे वैष्णवों के पञ्चतत्त्व को कहा, जिसके ज्ञान से अमृतत्व की प्राप्ति होती है और मनुष्य विष्णुस्वरूप हो जाता है।।८-९।।

यः कुर्यात् परमेशानि तत्त्वज्ञानं मयोदितम्।
स्वर्गमार्गो भवेन्मत्तो विष्णुलोके वसेत्सदा।।१०।।

हे परमेशानि! जो कोई मेरे द्वारा कथित इस तत्त्वज्ञान का अनुष्ठान करता है, वह मत्त होकर स्वर्गमार्ग का आश्रयण करता है एवं सदा विष्णुलोक में उसका निवास होता है।।१०।।

यदि भक्तियुतो मर्त्यो मनसा चिन्तयन् सदा।
ते नरा नहि गच्छन्ति कदाचिन्मम मन्दिरे।।११।।

जो मर्त्यलोक-वासी मानव सर्वदा भक्तियुक्त होकर मन ही मन इस पञ्चतत्त्व का चिन्तन करता है, वह कभी भी मेरे लोक में गमन नहीं करता।।११।।

इति ते कथितं तत्त्वं वैष्णवस्य सुरेश्वरि।
यज्ज्ञानादमरत्वञ्च लभते नात्र संशयः।।१२।।

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरचण्डिकासंवादे
विष्णोस्तत्त्वकथनं नाम द्वादशः पटलः

हे सुरेश्वरि! इस प्रकार मैंने तुमसे वैष्णवतत्त्व का वर्णन किया। इसके ज्ञान से अमरत्व की प्राप्ति होती है, यह निःसन्दिग्ध है।।१२।।

निर्वाणतन्त्र का द्वादश पटल समाप्त

त्रयोदशः पटलः

श्रीचण्डिका उवाच

सृष्ट्यात्मकं दशार्णञ्च पुरैव कथितन्तु मे।
प्रकाशरूपे तन्मन्त्रं कथयस्व दयानिधे ॥१॥

श्रीचण्डिका कहती है—हे दयानिधे! आपने पहले सृष्ट्यात्मक दशार्ण मन्त्र का वर्णन किया था, उस मन्त्र को अब प्रकाशित करने की कृपा करें।।१।।

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मन्त्रं दशाक्षरं परम्।
यस्य श्रवणमात्रेण मूढोऽपि विष्णुरूपधृक् ॥२॥
पुंमन्त्रो यदि देवेशि शक्तिमन्त्रं जपेद्यदि।
अज्ञात्वा तन्महामन्त्रं स भवेद् ब्रह्मराक्षसः ॥३॥

श्री शिव कहते हैं—हे देवि! मै श्रेष्ठ दशार्ण मन्त्र को कहता हूँ, जिसके श्रवण-मात्र से ही मूढ़ व्यक्ति भी विष्णुस्वरूप हो जाता है। यदि उस महामन्त्र को जाने विना कोई पुरुष शक्तिमन्त्र का जप करता है तो वह ब्रह्मराक्षस होता है।।२-३।।

अज्ञात्वा तन्महामन्त्रं तत्त्वज्ञानी भवेद्यदि।
तथापि नरकं गच्छेदिति देवस्य सम्मतम् ॥४॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि दशार्णं मन्त्रमुत्तमम्।
मायाबीजं वधूबीजं लक्ष्मी काली च पाशकम्।
गगनं पक्षिबीजञ्च वह्निकान्तां भवेत् प्रिये ॥५॥
इति ते कथितं चण्डि दशाक्षरमनुत्तमम्।
यज्ज्ञानादमरत्वञ्च लभते नात्र संशयः ॥६॥

इस महामन्त्र को जाने विना यदि कोई तत्त्वज्ञानी होता है, तो उसे नरक में वास करना पड़ता है, यह देवताओं का मत है।

हे देवि! अव मै उत्तम दशार्ण मन्त्र को कहता हूँ, श्रवण करो। पहले मायाबीज (ह्रीं), तदनन्तर वधूबीज (स्त्रीं), लक्ष्मीबीज (श्रीं), कालीबीज (क्रीं), पाशक बीज (हंसः), गगनबीज (हं), पक्षिबीज (आं) एवं सबके अन्त में वह्निकान्ता (स्वाहा) लगाने से यह मन्त्र सम्पन्न होता है।

हे देवी चण्डि! इस प्रकार इस सर्वोत्तम दशार्ण मन्त्र को मैंने तुमसे कहा, जिसके ज्ञान से निश्चित रूप से अमरत्व की प्राप्ति होती है।।४-६।।

अस्य ग्रहणमात्रेण नरो नरायणो भवेत्।
अस्य प्रसादेन दण्डी सद्यो निर्वाणतां व्रजेत्।।७।।

इस मन्त्र का ग्रहण करने मात्र से ही मनुष्य नारायणस्वरूप हो जाता है एवं इसकी कृपा से दण्डी अर्थात् संन्यासी तत्क्षण निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—ह्रीं स्त्रीं श्रीं क्रीं हंस: हं आं स्वाहा।।७।।

दण्डोपरि जपेदेतद् दशार्णं परमेश्वरि।
अस्माद् मन्त्रान्महामन्त्रा जायन्ते न कदाचन।।८।।
सर्वे देवाः सदाराश्च दशार्णाज्जायते ध्रुवम्।
महाविद्योपासकश्च दशार्णं न हि पश्यति।।९।।
इह लोके दरिद्रश्च परे च ब्रह्मराक्षसः।
तस्माद् यत्नेन देवेशि दशार्णं श्रावयेद् गुरुः।।१०।।
केवलं श्रवणं कुर्यान्न जपेत्साधकोत्तमः।

हे परमेश्वरि! दण्ड के ऊपर इस दशार्ण मन्त्र का जप करना चाहिये। इस मन्त्र की अपेक्षा श्रेष्ठ मन्त्र अन्य कोई नहीं है। पत्नी-सहित सभी देवता इसी मन्त्र से उत्पन्न होते हैं। महाविद्या के उपासक भी यदि इस दशार्ण मन्त्र से अवगत न हों तो वे भी इस लोक में दरिद्र होकर परलोक में गमन करने पर ब्रह्मराक्षस होते हैं। इसलिये गुरु को यत्नपूर्वक शिष्य को दशार्ण मन्त्र का उपदेश करना चाहिये। श्रेष्ठ साधक को इसका केवल श्रवण ही करना चाहिये, जप नहीं करना चाहिये।।८-१०।।

यः श्रावयेद् दशार्णञ्च स नरो गुरुरुत्तमः।
मन्त्रदाता यथा देवि तथैव स गुरुः स्मृतः।।११।।

जो गुरु दशार्ण मन्त्र का उपदेश करता है, वही उत्तम गुरु होता है। इसका मन्त्रदाता जिस तरह से गुरु कहा जाता है, इस मन्त्र को सुनने वाला भी वैसे ही गुरु होता है।।११।।

दशार्णदाता यो देवि स एव परमो गुरुः।
यथैव च तरङ्गिण्या न समाः सकलापगाः।।१२।।
दशार्णस्य समो नास्ति मन्त्रोऽपि सुरपूजिते।
त्वत्समा यदि नारी च मत्समः पुरुषोऽस्ति सः।।१३।।

हे देवि! जो दशार्ण का दान करते हैं, वे ही श्रेष्ठ गुरु होते हैं। जिस प्रकार समस्त

नदियाँ एक साथ मिलकर भी गंगा की के साथ सभी नदी मिलित भाव से होने पर भी समानता नहीं कर सकतीं। हे देवपूजिते! इस दशार्ण मन्त्र के समान अन्य कोई मन्त्र नहीं है। तुम्हारे समान नारी और मेरे समान पुरुष भी इसकी बराबरी करने में समर्थ नहीं हो सकते।।१२-१३।।

दशार्णस्य समं मन्त्रं कथयामि वरानने।
दशकार्णस्य स्वर्गस्य सदृशं मोहयन्ति च ॥१४॥
दशार्णस्य समं मन्त्रं कथयेयुस्तदा प्रिये।
श्रीप्रसादः ह्ययं मन्त्रो दशार्णः परमेश्वरि ॥१५॥
ऊर्ध्वाम्नायमहातन्त्रे कथयामि वरानने।

हे वरानने! दशार्ण के समान अन्य मन्त्र को मैं कहता हूँ। हे परमेश्वरि! यह मन्त्र देवताओं के निवासस्थान स्वर्ग को भी मोहित करने वाला हैं। इस दशार्ण मन्त्र के सम्वन्ध में देवी कहती हैं कि इसके तुल्य कोई मन्त्र नहीं है। इसके दर्शनलाभ से लक्ष्मी प्रसन्न हो जाती है। हे वरानने! उसे मैं ऊर्ध्वाम्नाय महातन्त्र में कहूँगा।।१४-१५।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि यद्रूपं दण्डधारणम् ॥१६॥
साधुरूपो गृहस्थश्च ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः।
सर्वमायापरित्यक्तः सदा धर्मपरायणः ॥१७॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधः समत्वं सर्वजातिषु।
पुत्रे रिपौ समत्वञ्च समः स्वर्गे च पार्थिवे ॥१८॥
दयाभावश्च सर्वत्र पुत्रे मित्रे रिपौ भवेत्।
लाभालाभे जये नाशे निन्दायां पौष्टिके तथा ॥१९॥
काये प्राणे न सम्बन्धः सर्वदा समभावुकः।
तत्त्वज्ञानं विना ज्ञानं यस्य चित्ते न विद्यते ॥२०॥
संन्यासधर्मस्तस्यैव नान्यस्य सुरपूजिते।
संन्यासधारणं कार्यं विप्रस्य मुक्तिहेतवे ॥२१॥

अब इसके बाद दण्डधारण की विधि को कहता हूँ। हे देवपूजिते! साधुरूप गृहस्थ ब्राह्मण ब्रह्मवादी होकर समस्त प्रकार की माया का परित्याग करके सदैव धर्मपरायण, ज़ितेन्द्रिय, जितक्रोध, सभी के प्रति समता का भाव रखने वाला, पुत्र तथा शत्रु में भी समत्व का व्यवहार करने वाला, स्वर्ग एवं मर्त्यलोक में तुल्य बुद्धि रखने वाला, पुत्र-मित्र-शत्रु सभी में एक समान दयाभाव रखने वाला, लाभ-हानि, जय-पराजय, निन्दा तथा पुष्टि में भी एक समान रहने वाला, शरीर तथा प्राणों में आत्मभावना से रहित, चित्त में तत्त्वज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान न रखने वाला ही संन्यास धर्म

के योग्य कहा जा सकता है; इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी संन्यास धर्म के योग्य नहीं कहा जा सकता। ब्राह्मण को मुक्ति के लिये इसी विधि के अनुसार संन्यास धारण करना चाहिये।।१६-२१।।

यो विप्रो धारयेद् दण्डं सैव नारायणः स्वयम्।
चतुर्भुजाः प्रजायन्ते दण्डधारणमात्रतः ॥२२॥

जो ब्राह्मण दण्ड धारण कर लेता है, वह स्वयं नारायणस्वरूप हो जाता है। दण्ड को धारण करने मात्र से उसकी चार भुजायें हो जाती हैं।।२२।।

सर्वलक्षणसंयुक्तो ब्राह्मणो गमनं चरेत्।
गत्वा च दण्डिनं दृष्ट्वा प्रणमेद् दण्डवत् क्षितौ ॥२३॥
त्वमेव देवदेवेश त्वमेव त्राणकारकः।
त्वमेव जगतां बन्धुस्त्राहि मां शरणागतम् ॥२४॥
इति श्रुत्वा दण्डधारी प्रपच्छ सादराञ्जलिम्।
कस्त्वं कस्य सुतस्त्वं हि कथमागमनं वद ॥२५॥

समस्त लक्षणों से युक्त ब्राह्मण को दण्डधारी के पास जाकर उसे दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये और उससे इस प्रकार कहना चाहिये—आप देवाधिपति, त्राणकर्त्ता एवं जगत् के बन्धु हैं; अतः आप मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये।

यह सुनकर दण्डधारी को आगत व्यक्ति से आदरपूर्वक इस प्रकार पूछना चाहिये—आप कौन हैं, किसके पुत्र हैं तथा किसलिये मेरे पास आये हैं?।।२३-२५।।

श्रुत्वा तद्वचनं विप्रः प्रोवाचात्मनिवेदनम्।
विप्रवंशे समुद्भूतो ह्यमुकोऽहं विवेकवान् ॥२६॥
नास्ति मे पितरौ साक्षान्नास्ति मे स्त्रीसुतादयः।
मृतौ च मातापितरौ मृता भ्रात्रादयः सुताः ॥२७॥

दण्डी के उक्त वचन को सुनकर ब्राह्मण को अपने विषय में सबकुछ निवेदित करना चाहिये और इस प्रकार कहना चाहिये—विप्रवंश में उत्पन्न अमुक नाम वाला मैं व्यक्ति हूँ। मेरे माता-पिता, स्त्री-पुत्रादि जीवित नहीं हैं; अपितु माता-पिता-भ्राता-पुत्र आदि सभी मृत हो चुके हैं।।२६-२७।।

पश्चात् स्वकान्तानाशे ह्यहमत्यन्ततापवान्।
अत एव हि भो स्वामिन् देहि मे परमाश्रयम् ॥२८॥

उसके अनन्तर पत्नी का भी नाश हो जाने से मैं अत्यन्त सन्तप्त हूँ। अतः हे स्वामिन्! आप मुझे अपना श्रेष्ठ आश्रय प्रदान करें।।२८।।

सत्यं कुरु द्विजश्रेष्ठ यदुक्तं वै ममान्तिके।
मिथ्याभाषणदोषेण ब्रह्मवर्त्मविवर्जितः।
भवत्येव न सन्देहो द्विज मत्पुरतो वद॥२९॥
स्थितायां यौवनायां च कान्तायां परमेश्वरि।
सर्वं हि विफलं तस्य यः कुर्यात् दण्डधारणम्॥३०॥

(दण्डधारी कहते हैं—) हे द्विजश्रेष्ठ! तुमने मुझसे जो कहा, उसका सत्यापन करो। हे ब्राह्मण! मेरे समीप तुमने जो कहा है, यदि वह मिथ्या दोष से दूषित है, तो तुम ब्रह्मपथ से च्युत हो जाओगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

हे परमेश्वरि! भार्या के यौवनावस्था में रहते हुये जो दण्ड धारण करते हैं, उनका दण्ड धारण करना व्यर्थ होता है और उनको रौरव नरक की प्राप्ति होती है।।२९-३०।।

पितरौ विद्यते देवि यः कुर्याद् दण्डधारणम्।
संन्यासं विफलं तस्य रौरवाख्यं स गच्छति॥३१॥
विद्यते बालभावे च यस्य कान्ता सुतस्तथा।
संन्यासधारणं तस्य वृथा हि परमेश्वरि।
स गुरुश्चापि शिष्यश्च रौरवाख्यं प्रगच्छति॥३२॥
इत्यादि दृढवाक्यन्तु श्रुत्वा चण्डी जितेन्द्रियः।
संन्यासदानं तस्यैव दद्यान्मुक्तिञ्च शाश्वतीम्॥३३॥

हे देवि! पिता-माता के रहते हुये जो दण्ड धारण करता है, उसका वह संन्यास व्यर्थ होता है एवं उसे रौरव नरक की प्राप्ति होती है। हे परमेश्वरि! युवावस्था वाली पत्नी एवं बालक पुत्र के रहते हुये कोई व्यक्ति यदि दण्ड-धारण (संन्यास-धारण) करता है तो उस स्थिति में संन्यास प्रदान करने वाला एवं लेने वाला गुरु तथा शिष्य दोनों ही नरक के भागी होते हैं।

इन सब दृढ़ वाक्यों को सुनकर भी जो जितेन्द्रिय रह सकते हैं, वे ही दण्डी होने के अधिकारी होते हैं और उनको ही संन्यास प्रदान करना चाहिये तथा उन्हें ही शाश्वत मुक्ति की प्राप्ति होती है।।३१-३३।।

आदौ दशाक्षरं मन्त्रं प्रथमं श्रावयेद् गुरुः।
तच्छ्रुत्वा च महावर्त्मगमनं कारयेत् ततः॥३४॥

सबसे पहले गुरु को शिष्य को दशार्ण मन्त्र सुनाना चाहिये और उसे सुनकर शिष्य को महापथ (संन्यास पथ) पर गमन कराना चाहिये।।३४।।

क्रोशं वा क्रोशयुग्मं वा वेगेन गमनं चरेत्।
गुरुणा सह शिष्येण पृष्ठे पृष्ठे विधावतः॥३५॥

तिष्ठ तिष्ठ महाबाहो मां त्यक्त्वा न हि गच्छतु ।
शिष्यं परमहंसस्त्वं त्वत्समो नास्ति भूतले ॥३६॥

गुरु को एक कोस अथवा दो कोस तक वेग के साथ गमन करना चाहिये एवं शिष्य को भी वेगपूर्वक ही उन गुरु का अनुगमन करना चाहिये; साथ ही शिष्य को गुरु से इस प्रकार कहना चाहिये—हे महाबाहो! रुकिये। मुझ शिष्य का त्याग करके मत जाईये। आप परमहंस हैं। पृथ्वी पर आपकी तुलना में कोई भी नहीं है।।३५-३६।।

क्षन्तव्यमपराधं मे त्वमेव विष्णुरूपधृक् ।
त्वमेव जगतां बन्धुस्त्वमेव सर्वपूजितः ॥३७॥

आप मेरे अपराधों को क्षमा करिये! आप साक्षात् विष्णुस्वरूप हैं। आप ही इस जगत् के बन्धु हैं एवं आप ही सबके द्वारा पूजित हैं।।३७।।

त्वमेव परमो हंसस्तिष्ठ तिष्ठ तु मा व्रज ।
स शिष्यो दण्डिनं देवि इति वाक्यं वदेदतः ॥३८॥
अतः स परमो हंसः पथिकः प्रथमोदितः ।
तस्यैव दर्शनार्थाय चान्तरिक्षे च देवताः ॥३९॥
सस्त्रीकाः परिवाराश्च आयान्ति दिग्विदिक्षु च ।

आप ही परमहंस हैं; अतः आप रुक जायँ, मत जायँ। हे देवि! वह शिष्य उस दण्डधारी गुरु से इस प्रकार कहे। इसीलिये उस परमहंस को प्रथम पथिक कहा गया है। उसके दर्शन-हेतु ही विभिन्न दिशाओं एवं विदिशाओं से अपनी-अपनी पत्नियों तथा परिवार के साथ अन्तरिक्ष में देवगण उपस्थित होते हैं।।३८-३९।।

एतस्मिन् समये दण्डी शान्तयेत् शिष्यमुत्तमम् ।
फूत्कारं बहुशो दत्त्वा मन्त्रेणानेन सुव्रतः ॥४०॥
फूत्कारैर्वायुयोगैश्च पुनः प्राणे नियोजयेत् ।
जन्मान्तरन्तु तस्यैव तत्क्षणे जायते किल ॥४१॥
जन्मान्तरं समालोक्य संस्कारमाचरेद् गुरुः ।
कुण्डान्तिके समानीय अन्नप्राशनमाचरेत् ॥४२॥

इसी समय दण्डधारी गुरु दशार्ण मन्त्र को अनेक फूत्कार के साथ (कान में) उस व्रती उत्तम शिष्य को प्रदान करके उस शिष्य को शान्त करे। फूत्कार द्वारा वायुयोग से नूतन प्राण में सन्निवेश करे तथा तत्क्षण ही उसके जन्मान्तर का साधन करे। अर्थात् गुरु उसके जन्मान्तरों का अवलोकन करके उसको कुण्ड के समीप लाकर उसका अन्नप्राशनादि संस्कार सम्पन्न कराये।।४०-४२।।

अमुकस्त्वं समाभाष्य पुष्पं वह्नौ विनिक्षिपेत्।
इति नाम्ना तु संस्थाप्य महासंस्कारमाचरेत् ।।४३।।

गुरु (शिष्य का नामकरण करके) यह कहते हुये कि तुम 'अमुक' हो अग्नि में पुष्प का निःक्षेप करे। साथ ही उसे उसके नये नाम से पुकार कर महासंस्कार का अनुष्ठान प्रारम्भ करे।।४३।।

ततोऽति दण्डिना देवि शिष्याय ज्ञानहेतवे।
शृणु शिष्य महाभाग! मद्वाक्यं हृदयं कुरु ।।४४।।
जन्मान्तरन्तु तस्यैव पृथिव्यां नाधिकारिता।
मृतदेहस्वरूपोऽयं शरीरोऽयं न संशयः ।।४५।।
विरतो भव सर्वत्र तोयाद्याहारचेष्टया।
ब्रह्मणेऽपि च यदण्डं तन्मात्रभोजनं तव ।।४६।।

हे देवि! तदनन्तर विशिष्ट दण्डधारी गुरु ज्ञानार्थ शिष्य से इस प्रकार कहे—हे महाभाग्यवान् शिष्य! सुनो, मेरे वाक्य को अपने हृदय में धारण करो। जिसका जन्मान्तर हो गया, उसका इस पृथिवी पर कोई अधिकार नहीं रह जाता और उसका यह शरीर मृत शरीर में परिणत हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः सर्वत्र जलादि के भोजन से विरत हो जाओ। ब्रह्मलाभार्थ जो यह दण्डधारण तुमने किया है, मात्र वही तुम्हारा आहार है।।४४-४६।।

पञ्चतत्त्वं समासेव्यं गुप्तभावेन पार्वति।
सदैव मानसीं पूजां सदा मानसतर्पणम् ।।४७।।
त्रिसन्ध्यं मानसं योगं नाभिकुण्डे प्रयत्नतः।
सदैव मानसं भोगं त्यागं कुरु प्रयत्नतः ।।४८।।

हे पार्वति! संन्यासी को गुप्त भाव से पञ्चतत्त्व का सेवन करना चाहिये। सदा मानस पूजा तथा मानस तर्पण करना चाहिये। यत्नपूर्वक तीनों सन्ध्याओं में नाभिकुण्ड में मन लगाकर प्रयत्नपूर्वक बहिर्भोगों का परित्याग करना चाहिये।।४७-४८।।

षड्वर्गेषु जितो भूत्वा नरो नारायणः स्वयम्।
भवत्येव न सन्देहो दण्डधारणमात्रतः ।।४९।।
पितृवंशे सप्तदश मातृवंशे त्रयोदश।
कान्तायाः सप्तमश्चैव लक्ष्मीनारायणो भवेत् ।।५०।।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य शिष्यश्चैतद्ब्रवीद्वचः।
यदुक्तं मयि मुक्त्यर्थं तत् करोमि निरन्तरम्।
पञ्चतत्त्वं सदा सेव्यं कस्माद्भावाद्वदस्व मे ।।५१।।

कामादि षड्वर्ग को विलित करके दण्ड धारण करने से निश्चित रूप से मानव नारायण के समान हो जाता है। संन्यासी के पितृकुल की सत्रह पीढ़ियाँ, मातृकुल की तेरह पीढ़ियाँ एवं पत्नीकुल की सात पीढ़ियाँ लक्ष्मी-नारायणस्वरूप हो जाती हैं।

गुरु के इन वचनों को सुनकर शिष्य इस प्रकार निवेदित करे—मेरी मुक्ति के लिये आपने जो कुछ भी कहा है, उसका मैं निरन्तर पालन करूँगा। अब मुझे आप यह बतायें कि किस भाव से सदा-सर्वदा पञ्चतत्त्व का सेवन करना चाहिये।।४९-५१।।

यत्रैव वर्त्तते दण्डी बहुशिष्यसमावृतः।
तत्र गत्वा प्रयत्नेन पञ्चतत्त्वविचेष्टया।
अथवा वीरमध्ये तु यत्नेन गमनं चरेत्।।५२।।

(गुरु कहते हैं—) जहाँ बहुत शिष्य से घिरा हुआ दण्डी अवस्थान करता है, यत्नपूर्वक वहाँ जाकर पञ्चतत्त्व के सेवन-हेतु निवास करना चाहिये अथवा जहाँ वीरगण अवस्थित रहते हैं, वहाँ जाकर उनके मध्य में वास करना चाहिये।।५२।।

तत्त्वज्ञानी गृहस्थस्य सन्निधाने व्रजेत् किल।
सुदूरमपि गन्तव्यं यत्रास्ते कुलनायकः।।५३।।

अथवा (पञ्च) तत्त्वज्ञानी गृहस्थ के समीप गमन करना चाहिये अथवा दूर होते हुये भी जहाँ कुलपति निवास करते हों, वहाँ जाना चाहिये।।५३।।

भिक्षा कार्या न च स्वार्थं देवतायाः कृते पुनः।
आचार्यपत्नीं दृष्ट्वा तु भिक्षां कुर्यात् समाहितः।।५४।।
हे मातर्देहि मे भिक्षां कुण्डलीं तर्पयाम्यहम्।
एवमुक्त्वा ततो दण्डी महासंस्कारमाचरेत्।।५५।।
कुण्डान्तिके समानीय होमयेद् विधिपूर्वकम्।
ततो हुनेत् करं धृत्वा आज्यैरष्टाहुतिं पुनः।
विपरीतक्रमेणैव कुर्याद्बन्धुविशोधनम्।।५६।।

अपने लिये कभी भी भिक्षा नहीं मांगनी चाहिये; अपितु देवता की सेवा के लिये भिक्षा की याचना करनी चाहिये। आचार्यपत्नी को देखकर सावधान होकर इस प्रकार भिक्षा मांगनी चाहिये—हे माते! मुझे भिक्षा दीजिये, उससे मैं कुण्डली का तर्पण करूँगा। इस प्रकार से कहने के पश्चात् दण्डी का महासंस्कार सम्पन्न करना चाहिये। एतदर्थ कुण्ड के समीप आकर विधि के अनुसार होम करने के उपरान्त हाथ पकड़ कर घृत से आठ आहुति प्रदान करनी चाहिये। विपरीतक्रम से आहुति द्वारा शिष्य की शुद्धि करनी चाहिये।।५४-५६।।

ततः कुर्यात् प्रयत्नेन अन्तर्यज्ञोपवीतकम्।

शिखां तस्य शिखामन्त्रैः पूगमध्ये निधापयेत्।
मूलेन यज्ञसूत्रन्तु तस्मिन्नेव निवेशयेत्॥५७॥

तदनन्तर यत्नपूर्वक उसके लिये अन्तर्यज्ञोपवीत का विधान सम्पन्न करके उसी में शिखा-बन्धन मन्त्र से शिखा का तथा मूल मन्त्र से यज्ञोपवीत का स्थापन पूगमध्य में करना चाहिये।।५७।।

घृतैश्च मृत्तिकापूगं विलिप्य शोषयेत्ततः।
तत्पूगं मूलमन्त्रेण दण्डमध्ये विनिक्षिपेत्॥५८॥

तदनन्तर घृत से मृतिकापूग का लेपन करके उसे शुद्ध करना चाहिये। इसके बाद उसे मूल मन्त्र से दण्ड के मध्य में निक्षिप्त करना चाहिये।।५८।।

सयज्ञसूत्रं सशिखं तत्पूगं प्रेषयेत् प्रिये।
मूलमन्त्रं जपेत् तत्र गजान्तकसहस्रकम्॥५९॥
ततश्च श्रावयेन्मन्त्रं कालिकायाश्च सुन्दरि।
अथवा श्रावयेन्मन्त्रं तारायाश्च सुदुर्लभम्।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य पूगस्यापि प्रयत्नतः॥६०॥
भक्षणे तत्क्षणात् साक्षादन्तर्यज्ञोपवीतवान्।
भवत्येव न सन्देहो नरो नारायणः स्वयम्॥६१॥

हे प्रिये! तदनन्तर पूर्णाहूति प्रदान करने के उपरान्त उस पूग को लाकर यज्ञसूत्र तथा शिखा से युक्त उस पूग का प्रेषण करके मूल मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करना चाहिये। तदनन्तर शिष्य को कालिका का मन्त्र सुनाना चाहिये अथवा तारा के अत्यन्त दुर्लभ मन्त्र का श्रवण कराना चाहिये।

तदनन्तर मूल मन्त्र का उच्चारण करके यत्नपूर्वक उस पूग का शिष्य द्वारा भक्षण कराने से वह शिष्य तत्क्षण ही अन्तर्यज्ञोपवीत से युक्त होकर साक्षात् नारायणस्वरूप हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५९-६१।।

बिल्वदण्डं समानीय वंशस्यैकं समानयेत्।
ततो दण्डे न्यसेन्न्यासान् कालिकायाः प्रयत्नतः॥६२॥
जीवन्यासं ततो कृत्वा दण्डे देवीं विचिन्तयेत्।
बिल्वदण्डस्थचैतन्यं वंशदण्डे नियोजयेत्॥६३॥

तत्पश्चात् एक-एक बेल एवं बाँस का दण्ड लाकर बिल्वदण्ड में यत्नपूर्वक कालिका के न्यास का अनुष्ठान करना चाहिये। तत्पश्चात् जीवन्यास करने के उपरान्त दण्ड में देवी का चिन्तन करने के बाद विल्वदण्ड में आये चैतन्य को अन्न वंशदण्ड में नियोजित करना चाहिये।।६२-६३।।

इष्टदेवीस्वरूपेण दण्डोऽयं परमेश्वरि।
शिष्यस्य दक्षिणे हस्ते दण्डस्थापनमाचरेत्॥६४॥
कमण्डलुं समानीय वारुणं प्रजपेत् सुधीः।
वारुणीं निक्षिपेत्तत्र ततो मूलमनुं जपेत्॥६५॥

हे परमेश्वरि! उपर्युक्त विधान सम्पन्न करने के उपरान्त यह दण्ड इष्टदेवी-स्वरूप हो जाता है। अब उस दण्ड को शिष्य के दाहिने हाथ में स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर कमण्डलु लाकर उस पर 'वं' बीज का जप करके उसमें वारुणी (कारण = मद्य) का निक्षेप करने के पश्चात् मूल मन्त्र का जप करना चाहिये।।६४-६५।।

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तस्य वामकरे न्यसेत्।
गैरिकं कपिलं वस्त्रं यत्नेन परिधापयेत्॥६६॥
दण्डधारणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्।
अद्यावधि महामायां दण्डोपरि विभावय॥६७॥
कुरु पूजां महाकालीं दण्डोपरि विभावयेत्।
साक्षान्नारायणस्त्वं हि दयाधर्मपरो भव॥६८॥

इस प्रकार मूल मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके उस कमण्डलु को शिष्य के बाँयें हाथ में न्यस्त करने के उपरान्त उस शिष्य को यत्नपूर्वक गेरुआ वस्त्र धारण कराना चाहिये। दण्ड के धारण करने मात्र से ही वह शिष्य साक्षात् नारायणस्वरूप हो जाता है।

अव गुरु को उस दण्ड़धारी शिष्य से इस प्रकार कहना चाहिये—आज से दण्ड पर ही महामाया का चिन्तन करना, दण्ड पर ही महाकाली का पूजन करना। अब तुम साक्षात् नारायणस्वरूप हो गये हो; अत: दया-धर्म का आश्रय ग्रहण करो।।६६-६८।।

सोऽनुपद्गमनं गेहे गृहस्थस्य द्विजस्य च।
नारायणं समाभाष्य द्वारं तस्य व्रजेत् सुधीः॥६९॥
इति श्रुत्वा गृहस्थस्तु पुटाञ्जलिपरो भवेत्।
द्वारं च दण्डिनं दृष्ट्वा प्रणमेद् ब्राह्मणो वरः॥७०॥

तत्पश्चात् शिष्य को कुछ पैर चल कर 'नारायण' कहते हुये गृहस्थ ब्राह्मण के द्वार पर गमन करना चाहिये एवं उस ब्राह्मण गृहस्थ को 'नारायण' शब्द का श्रवण करते ही द्वार पर आये हुये दण्डी संन्यासी को देखकर उसे हाथ जोड़ कर प्रणाम करना चाहिये।।६९-७०।।

भिक्षां दद्यात् प्रयत्नेन मधु मांसं विना प्रिये।
आदाय भिक्षां देवेशि चौरवद् गमनं चरेत्॥७१॥

हे प्रिये! तदनन्तर उस गृहस्थ ब्राह्मण को द्वार पर समागत दण्डी को मद्य एवं मांस से रहित भिक्षा प्रदान करनी चाहिये; साथ ही उस दण्डी को भिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वहाँ से चोर के समान चुपचाप चले जाना चाहिये।।७१।।

गृहस्थस्यालये चैव रात्रिवासं च कारयेत्।
तथापि नगरं गत्वा त्रिरात्रं वसतिं चरेत्।
तीर्थभूमिं ततो गत्वा सप्ताहं वसतिं चरेत्।।७२।।

संन्यासी को गृहस्थ के घर में एक रात से अधिक निवास नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार नगर में तीन रात तथा तीर्थ में सात रात से अधिक अवधि तक निवास नहीं करना चाहिये।।७२।।

ब्राह्मणो दण्डिनं दृष्ट्वा प्रणमेद् विधिपूर्वकम्।
तोयपूर्णञ्च देवेशि किं वा शून्यकमण्डलुम्।
दृष्टिमात्रेण तत्पात्रं पूर्णं कुर्याद् द्विजोत्तमः।।७३।।

ब्राह्मण को दण्ड़ी संन्यासी को देखकर उसे विधिपूर्वक प्रणाम करना चाहिये। हे देवेशि! ब्राह्मण दण्डी के कमण्डलु को जलपूर्ण अथवा जलशून्य देखते ही श्रेष्ठ ब्राह्मण को उसे कारण (मद्य) द्वारा पूर्ण कर देना चाहिये।।७३।।

कुशाग्रमानं यद्बिन्दु यदि दद्यात् कमण्डलौ।
समुद्रसप्तदानस्य फलं स लभते ध्रुवम्।।७४।।
दद्यादन्नं यो मोहेन स भवेत् परमाश्रयः।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि ऊषरे विटपो भवेत्।।७५।।

कमण्डलु में कुशाग्रमात्र बिन्दु (मद्य) प्रदान करने से भी बुद्धिमान व्यक्ति को सात समुद्रों के दान का पुण्य प्राप्त होता है, यह निश्चित है; लेकिन मोहवशात् जो कोई यदि अन्न दान करता है, तो वह परमाश्रय होता है तथा वह तीस हजार वर्ष-पर्यन्त मरुस्थल में वृक्षयोनि प्राप्त करता है।।७४-७५।।

इति ते कथितं चण्डि संन्यासधारणं परम्।
न वक्तव्यं पशोरग्रे प्राणान्तेऽपि कदाचन।।७६।।

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरचण्डिकासंवादे
संन्यासविवरणं नाम त्रयोदशः पटलः

हे चण्डि! इस प्रकार तुमसे मैंने इस श्रेष्ठ संन्यास-धारण की विधि का वर्णन किया। प्राणान्त की स्थिति उपस्थित होने पर भी इसे किसी भी दशा में इसे पशुश्रेणी वाले के निकट प्रकाशित नहीं करना चाहिये।।७६।।

निर्वाण तन्त्र का त्रयोदश पटल समाप्त

चतुर्दशः पटलः

श्रीशङ्कर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि अवधूतो यथा भवेत्।
वीरस्य मूर्त्तिं जानीयात् सदा तपपरायणः ।।१।।
यद्रूपं कथितं पूर्वं संन्यासधारणं परम्।
तद्रूपं सर्वकर्माणि प्रकुर्यात् वीरवल्लभः ।।२।।

श्री शंकर कहते हैं—हे देवि! जिस विधि से अवधूत हो सकते हैं, उसे अब सुनो। जो सर्वदा तप:परायण हैं, वे वीरमूर्त्ति ही अवधूत कहलाते हैं। संन्यास-धारण कर्म में जिन विधियों का वर्णन किया गया है, उन्हीं विधियों का वीरवल्लभ अवधूत को भी अनुष्ठान करना चाहिये।।१-२।।

दण्डिनां मुण्डनं चैवामावास्यायां चरेद्यथा।
तथा नैव प्रकुर्यात्तु वीरस्य मुण्डनं प्रिये ।।३।।

हे प्रिये! जैसे दण्डी के लिये अमावस्या को मुण्डन का विधान बताय गया है, उस प्रकार अवधूत वीर का मुण्डन नहीं होता।।३।।

असंस्कृतकेशजालमुक्तालम्बितमूर्ध्वजः।
अस्थिमालाविभूषश्च रुद्राक्षान् वापि धारयेत् ।।४।।

अवधूत को असंस्कृत, मुक्त एवं प्रलम्बित केश धारण करना चाहिये। उसे अस्थियों की माला से विभूषित रहना चाहिये अथवा रुद्राक्षों की माला धारण करनी चाहिये।।४।।

दिगम्बरो वीरभद्रश्च अथवा कौपिनी भवेत्।
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गः कुर्याद् भस्मविभूषणम् ।।५।।
क्षमा दानं तपो ध्यानं बालभावेन शैलजे।
शिवोऽहं भैरवानन्दः समुण्डः कुलनायकः ।।६।।

उन वीरभद्रों को दिगम्बर अर्थात् पूर्णतः नग्न रहना चाहिये अथवा केवल कौपीन धारण करना चाहिये। उनके अंगों में रक्त चन्दन का लेप लगा होना चाहिये तथा भस्म से विभूषित होना चाहिये।

हे शैलजे! उन्हें बालभाव से सदा क्षमा, दान, तप एवं ध्यान में निरत रहना चाहिये। उन कुलनायक अवधूतों को 'मै शिव हूँ, मैं ही भैरवानन्द हूँ' इस भाव से कपालयुक्त रहना चाहिये।।५-६।।

एवं भावपरो मन्त्री हेतुयुक्तः सदा भवेत्।
संविदासेवनं कुर्यात् सदा कारणसेवनम्।
भवेत्साक्षात् स पुरुषः शम्भुरूपो न संशयः ॥७॥

उसे सदैव मन्त्र में निरत रहते हुये सर्वदा कारण (मद्य) से युक्त रहना चाहिये और सर्वदा विजया (भांग) तथा कारण का सेवन करते रहना चाहिये। इस प्रकार से वह पुरुष निःसन्दिग्ध रूप से साक्षात् शम्भुस्वरूप हो जाता है।।७।।

निर्वाणमुक्तिमाप्नोति ब्राह्मणो वीरभावतः।
अवधूतक्षत्रियश्च सहयोगी न संशयः ॥८॥

अवधूत ब्राह्मण वीरभाव से निर्वाण मुक्ति को प्राप्त करने वाले होते हैं और अवधूत क्षत्रिय (सायुज्य) सहयोगी होते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है।।८।।

स्वरूपोऽपि भवेद्वैश्यः शूद्रोऽपि सहलोकवान्।
सम्पूर्णफलमाप्नोति विप्रो निर्वाणतां व्रजेत् ॥९॥

इसी प्रकार वैश्य अवधूत सारूप्य तथा शूद्र अवधूत सालोक्य मुक्ति प्राप्त करते हैं, लेकिन ब्राह्मण अवधूत सम्पूर्ण फल को पाकर निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं।।९।।

त्रिभागफलमाप्नोति क्षत्रियो वीरभावतः।
पादद्वयस्य वैश्यस्य शूद्रस्य चैकपादकम् ॥१०॥

वीरभाव वाले क्षत्रिय तीन-चौथाई फल को प्राप्त करते हैं, वैश्य आधे फल को प्राप्त करते हैं एवं शूद्र एक-चौथाई फल को ही प्राप्त कर पाते हैं।।१०।।

ब्राह्मणन्तु विनान्यस्य संन्यासो नास्ति चण्डिके।
कुर्यान्मोहेन चान्यत्र सैव पापाश्रयो नरः ॥११॥
गुप्तभावेन देवेशि शृणु मत्प्राणवल्लभे।
संन्यासिना सदा सेव्यं पञ्चतत्त्वं वरानने ॥१२॥

हे चण्डिके! ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य किसी के लिये संन्यास धारण करने का विधान नहीं है। मोहवशात् यदि अन्य कोई संन्यास ग्रहण करता है, तो वह पाप का भागी होता है। हे प्राणवल्लभे! संन्यासी को गुप्त रूप से सदैव पञ्चतत्त्व का ग्रहण करना चाहिये।।११-१२।।

द्वादशाब्दस्य मध्ये च यदि मृत्युर्न जायते।
दण्डं तोये विनिक्षिप्य भवेत् परमहंसकः ॥१३॥
अवधूताचाररतः हंसः परमपूर्वकः।
सैव सानन्दविख्याता द्वादशाब्दे सरस्वती ॥१४॥
अवधूतस्य चावासं शृणुष्व पर्वतात्मजे।
वनेऽरण्ये प्रान्तरे च गिरौ च पुर एव च।
एकस्थाने च संस्थित्वा इष्टध्यानादिकं चरेत् ॥१५॥
यो मन्त्रदानतत्प्राज्ञः शरणं परिकीर्त्तितः।
श्रेष्ठकेशो जटाजूटः सदात्मवत् समाचरेत् ॥१६॥

संन्यास ग्रहण के बाद बारह वर्ष व्यतीत होने पर भी यदि उसकी मृत्यु न हो, तो उसे दण्ड का जल में परित्याग कर देना चाहिये; क्योंकि वह परमहंस हो जाता है। परमहंस अवधूत आचारवान रहते हुये बारह वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् भी यदि जीवित रहता है तो उसे आनन्दयुक्त सरस्वती नाम प्राप्त होता है (आनन्द सरस्वती)।

हे पर्वतकन्ये! अब अवधूत के स्थान के विषय में सुनो। उन्हें गभीर वन, खेत, पर्वत, नगर अथवा किसी एक ही स्थान पर रहते हुये इष्ट का ध्यान आदि आचरण करना चाहिये।

जो मन्त्रदान में पण्डित होते हैं, वे ही शरण कहे गये हैं। उनको उत्तम केश की जटायें बनाकर सर्वत्र आत्मवत् आचरण करना चाहिये।।१३-१६।।

अन्तर्यामी महावीरो ह्यवध्यः स च शैलजे।
नानाशस्त्रेषु यो विज्ञो नानाकर्मविशारदः ॥१७॥

हे पर्वतनन्दिनि! जो अनेक शास्त्रों के ज्ञाता होते हैं, विभिन्न कार्यों में कुशल अन्तर्यामी महावीर होते हैं, उनका कोई भी अनिष्ट करने में समर्थ नहीं हो सकता; अपितु वे सर्वतोभावेन अवध्य होते हैं।।१७।।

सदेष्टदेवीभावेन भावयेद्यो हि चाबलाम्।
स एव भारते वीरो महाज्ञानी जितेन्द्रियः ॥१८॥

जो सदैव प्रत्येक महिला में अपनी इष्टदेवी की भावना कर सकते हैं, वे ही भारत वर्ष में महावीर, महाज्ञानी तथा जितेन्द्रिय होते हैं।।१८।।

ऊर्ध्वबाहुः सदा वीरो मुक्तकेशो दिगम्बरः।
सर्वत्र समभावो यः स च नरोत्तमो भवेत् ॥१९॥

नानादेशेषु पीठेषु क्षेत्रेषु तीर्थभूमिषु।
भ्रमणं कुरुते नित्यं कुर्याद्यत्नेन पूजनम्॥२०॥

जो सर्वदा ऊर्ध्वबाहु, मुक्तकेश तथा दिगम्बर होकर सर्वत्र समान भाव से विचरण करने में समर्थ होते हैं, वे ही नरोत्तम होते हैं। वे अनेक देशों में, विभिन्न पीठों में, विभिन्न क्षेत्रों में एवं तीर्थस्थलों में भ्रमण करते रहते हैं तथा यत्नपूर्वक वहाँ नित्य पूजन करते रहते हैं।।१९-२०।।

देवतायाः सदा ध्यानं श्रीगुरोः पूजनं तथा।
अन्तर्यागेषु यो निष्ठः स वीरः परिकीर्त्तितः॥२१॥
अवधूताश्रमे देवि यस्य भक्तिश्च निश्चला।
तस्य तुष्टा भवेत्काली किं न सिध्यति भूतले॥२२॥
अवधूतं समालोक्य शम्भुं ज्ञात्वा तु पूजयेत्।
शक्तितः पञ्चतत्त्वानि यत्नेनैव निवेदयेत्॥२३॥
अशक्तः परमेशानि भक्तितः परितोषयेत्।
अवश्यं पूजयेद् वीरं गृहस्थः साधुरूपकः।
यो नार्चयति तं वीरं स भवेदापदाश्रयः॥२४॥

जो सर्वदा देवता का ध्यान तथा श्रीगुरु की पूजा करते हैं तथा अन्तर्याग में लगे रहते हैं, वे ही वीर कहलाते हैं। हे देवि! जिनकी अवधूताश्रम में निश्चला भक्ति है, उनके प्रति ही काली प्रसन्न होती हैं; अतः उसके लिये भूतल पर किसी भी प्रकार की सिद्धि असम्भव नहीं रहती।

अवधूत को देख कर शम्भु समझकर उनका पूजन करना चाहिये तथा अपनी शक्ति के अनुसार यत्नपूर्वक उन्हें पञ्चतत्त्व निवेदित करना चाहिये। हे परमेशानि! जो ऐसा करने में अशक्त हो, उसे वस्तु से नहीं; अपितु अपनी भक्ति से उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये।

घर आये हुये साधु स्वरूप वाले वीर की पूजा अवश्य करनी चाहिये। जो कोई यदि उस वीर साधक की पूजा नहीं करता, तो वह अनेक प्रकार की विपत्तियों से आच्छन्न हो जाता है।।२१-२४।।

ब्रह्मचर्यं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि समाहितः।
यस्याचरणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्॥२५॥
गौरिक वसनं कुर्याद् देवताध्यानतत्परः।
फलमूलाहाररतो दुग्धं गव्यं समाहरेत्॥२६॥

हे देवि! अब मैं ब्रह्मचर्य का वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर श्रवण करो। इस ब्रह्मचर्य के आचरणमात्र से ही मनुष्य नारायण हो जाता है।

ब्रह्मचारी को गैरिक वस्त्र धारण करना चाहिये एवं हर समय देवता के ध्यान में लगे रहना चाहिये। उसे फल-मूल का आहार ग्रहण करना चाहिये एवं गाय के दूध का पान करना चाहिये।।२५-२६।।

शाल्युद्भवं न गृह्णीयात् शूद्रानीतं तथा जलम्।
ऋतुकालं विना नैव स्वकान्तागमनं चरेत्।।२७।।
गृहस्थोऽपि महेशानि ब्रह्मचारी सदा गुरुः।
उदासीनः कदाचिद्वै गुणकर्माधिपो भवेत्।
तस्य शिष्यस्य कल्याणं कदाचिन्नास्ति चण्डिके।।२८।।

उसे शालि अर्थात् अन्न से बने पदार्थों का ग्रहण नहीं करना चाहिये, शूद्र द्वारा लाये गये जल का पान नहीं करना चाहिये एवं ऋतुकाल के अतिरिक्त समय में अपनी पत्नी के साथ से अभिगमन नहीं करना चाहिये।

हे महेशानि! यदि गृहस्थ भी ब्रह्मचारी है, तो वह भी सर्वदा गुरु होता हैं। हे चण्डिके! उदासीन यदि गुण तथा कर्म द्वारा प्रधानता को प्राप्त कर लेता है, तो भी यदि वह गुरु हो तो उसके शिष्य का कभी भी कल्याण नहीं होता।।२७-२८।।

नखलोमादिकं देवि न त्याज्यं ब्रह्मचारिणा।
सर्वत्रैव दयाभावं सदैव ध्यानतत्परः।
त्रिशूलं धारयेच्चैकं त्रिशिखं वापि धारयेत्।।२९।।
ताम्रयुक्तञ्च रुद्राक्षं कर्णयुग्मे निवेशयेत्।
यद्देशे विद्यते देवि! ब्रह्मचारी तपोधनः।
तद्देशे च स्थिरा लक्ष्मीर्जायते नात्र संशयः।।३०।।

हे देवि! ब्रह्मचारी को नख-लोम आदि का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिये। उसे हर जगह दयाभाव रखना चाहिये एवं सर्वदा ध्यान में तत्पर रहना चाहिये। उसे एक शिखा वाला अथवा तीन शिखाओं वाला त्रिशूल धारण किये रहना चाहिये; साथ ही उसे अपने कानों में ताम्रयुक्त रुद्राक्ष धारण करना चाहिये।

हे देवि! जिस देश में तपस्वी ब्रह्मचारी विद्यमान रहता है, उस देश में स्थिर लक्ष्मी निवास करती है; इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२९-३०।।

अथ वक्ष्ये गृहस्थस्य लक्षणं शृणु चण्डिके।
पाणौ होमश्चातिथीनां सेवनं देवपूजनम्।।३१।।

पितृश्राद्धं कुलाचारं तत्त्वज्ञानं समाचरेत्।
निजकान्ता सदा पूज्या निजकान्ता हि देवता ।।३२।।
मानसं पूजनं कुर्यात् ततः सञ्जपमाचरेत्।
मानसो हि महाधर्मो मानसे नास्ति पातकम् ।।३३।।

हे चण्डिके! अव गृहस्थ के लक्षण को कहता हूँ, सुनो। गृहस्थ का नित्यकर्म है—पाठ, होम, देवपूजन एवं अतिथि-सेवा। उसे पितृश्राद्ध, कुलाचार एवं तत्त्व(पञ्च)-ज्ञान का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। गृहस्थ को अपनी पत्नी का सदा आदर करना चाहिये; क्योंकि उसके लिये वही देवता होती है।

गृहस्थ को पहले मानस पूजन करना चाहिये, उसके बाद सम्यक् रूप से मन्त्र का जप करना चाहिये। मानसिक अनुष्ठान महान् धर्मस्वरूप होते हैं; इनमें किसी प्रकार के प्रत्यवाय की आशंका नहीं रहती।।३२-३३।।

सर्वेषां पितृरूपोऽसौ गृहस्थः साधुरूपकः।
सदाचाररतः श्रीमान् सदा यज्ञपरायणः ।।३४।।

साधु गृहस्थ सबके पिता-समान होता है। वह हर समय सदाचार में रत रहने वाला, श्री से युक्त तथा यज्ञों का अनुष्ठान करने वाला होता है।।३४।।

स्थापयेत् पञ्चतत्त्वानि गेहमध्ये प्रयत्नतः।
तदैव सर्वसिद्धीशो भवत्येव न संशयः ।।३५।।
यस्मिन्मन्त्रे विचारोऽपि सिद्धारिगणदूषणम्।
तत्तत् सर्वं महेशानि गृहस्थस्य सुनिश्चितम् ।।३६।।
सुविचार्य महामन्त्रं गृह्णीयात् साधकोत्तमः।
एकाक्षरे तथा कूटे मालामुद्रादि वैदिके ।।३७।।
विचारो नास्ति देवेशि स्वप्नलब्धे तथैव च।
तथापि च गृहस्थस्य सुविचार्यो महामनुः ।।३८।।

गृहस्थ को यत्नपूर्वक अपने घर में पञ्चतत्त्व की स्थापना करनी चाहिये, ऐसा करने से वह सभी सिद्धियों का अधिपति हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

गृहस्थाश्रम में मन्त्र-ग्रहण के समय आदि का विचार आवश्यक होता है; क्योंकि मन्त्रों के सिद्ध-अरि आदि दोष होते हैं। अत: हे महेशानि! गृहस्थ को इन सब सिद्ध-अरि आदि का विचार करके ही मन्त्र का ग्रहण करना चाहिये। साधकश्रेष्ठ को उत्तम विचारोपरान्त ही महामन्त्र का ग्रहण करना चाहिये।

हे देवेशि! एकाक्षर मन्त्र, कूट मन्त्र, माला-मुद्रादि वैदिक मन्त्र तथा स्वप्न में

प्राप्त मन्त्र का विचार नहीं किया जाता; फिर भी सम्यक् रूप से विचार करने के बाद ही गृहस्थ को मन्त्र-ग्रहण करना चाहिये।।३५-३८।।

दण्डिनो दूषणं नास्ति सर्वमन्त्रस्य दीक्षणे।
गृहस्थाश्रममासाद्य तत्त्वज्ञानेषु योगतः ॥३९॥
स मुक्तः सर्वपापेभ्यः स च साक्षान्महेश्वरः।
अन्नदानेन यत्पुण्यं तोयदानेन यत्फलम्।
तत्तत्सर्वं गृहस्थस्य नानाफलमवाप्नुयात् ॥४०॥

दण्डी के लिये सभी मन्त्रों की दीक्षा देने में कोई दोष नहीं होता। गृहस्थाश्रम में रहकर वे तत्त्वज्ञान में युक्त रहते हैं। वे सभी पापों से मुक्त होकर साक्षात् महेश्वरस्वरूप होते हैं। अन्नदान करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है एवं जलदान से जो फल प्राप्त होता है, उन समस्त फलों के साथ-साथ अन्य अनेक फलों की प्राप्ति भी गृहस्थ को होती है।।३९-४०।।

इति ते कथितं कान्ते चतुराश्रमलक्षणम्।
न वक्तव्यं पशोरग्रे प्राणान्तेऽपि सुरेश्वरि ॥४१॥

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरपार्वतीसंवादे
चतुराश्रमवर्णनं नाम चतुर्दशः पटलः

हे प्रिये सुरेश्वरि! इस प्रकार तुमसे मैंने चारो आश्रमों के लक्षणों का निरूपण किया। प्राणान्त की स्थिति उपस्थित होने पर भी इन लक्षणों को पशुश्रेणी के व्यक्ति के समक्ष कदापि प्रकट नहीं करना चाहिये।।४१।।

निर्वाणतन्त्र का चतुर्दश पटल समाप्त

पञ्चदशः पटलः

श्रीदेवी उवाच

त्वत्प्रसादान्महादेव पवित्राहं न चान्यथा।
शम्भुनाथार्चनं देव श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम्॥१॥

हे महादेव! आपकी कृपा से ही मैं पवित्र हो सकी हूँ। हे देव! अब इस समय मैं भगवान् शम्भु के अर्चन को सुनना चाहती हूँ।।१।।

शृणु पार्वति वक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
नकुलीशं समुद्धृत्य मनुस्वरविभूषितम्॥२॥
बिन्दुनादकलायुक्तं प्रदास्यं महामनुम्।
वारुणमर्धवृत्तञ्च वायुललाटसंयुतम्॥३॥
ध्येयं पञ्चाक्षरं मन्त्रं पञ्चाम्नायफलप्रदम्।
प्रणवादि यदा देवि तदा मन्त्रं षडक्षरम्॥४॥
प्रसादाख्यं समुद्धृत्य अर्धनारीश्वराय च।
पूर्णप्रासादमुद्धृत्य मन्त्रं परमगोपनम्॥५॥

हे पार्वति! जो तुमने मुझसे पूछा है, उसे अब मैं कहता हूँ। नकुलीश का उद्धार करके उसे मनु स्वर से विभूषित करने के पश्चात् बिन्दु, नाद एवं कला से युक्त करके वारुण एवं अर्धवृत्त से युक्त तथा ऊपर में वायुबीज से संयुक्त शम्भु का पञ्चाक्षर मन्त्र पाँचों आम्नायों के फल को प्रदान करने वाला होता है। इस पञ्चाक्षर मन्त्र के आदि में यदि प्रणव (ॐ) लगाया जाता है तो यही मन्त्र छः अक्षरों वाला हो जाता है। साथ ही प्रसाद के बाद अर्धनारीश्वराय कहकर पुनः प्रसाद मन्त्र लगाने से यह मन्त्र अत्यन्त गोपनीय होता है।।२-५।।

एवं बहुविधाकारं विग्रहं मेनकात्मजे।
कण्ठे तु गरलं देवि नरो नो भावयेत् क्वचित्॥६॥
यदीच्छेदात्मनो मृत्युं यदि उन्मत्तमिच्छति।
तदैव सहसा देवि नीलकण्ठमुपास्महे॥७॥

हे मेनकात्मजे! इसी प्रकार के अनेकानेक विग्रह उन शम्भु के कहे गये हैं। फिर

भी कण्ठ में विष वाले स्वरूप की अर्थात् नीलकण्ठ के स्वरूप की भावना कभी भी मनुष्य को नहीं करनी चाहिये। हे देवि! मनुष्य यदि अपनी मृत्यु चाहता हो अथवा उन्मत्त होना चाहता हो तभी उसे नीलकण्ठ की उपासना करनी चाहिये।।६-७।।

त्वरदृष्टञ्च मां देवि नीलकण्ठस्तवादिकम्।
करोति कारयेद्वापि मम हत्यां करोति सः ।।८।।
अत एव महेशानि स पापिष्ठो न चान्यथा।
निषिद्धाचरणं पापं करोति यदि मानवः ।।९।।
पुत्रदाराजनं तस्य नाशयामि न संशयः।

हे देवि! मेरे कण्ठ से प्रवहमान विष वाले स्वरूप को देखकर यदि कोई मेरी उपासना करता अथवा करवाता है तो वह मनुष्य मानों मेरी हत्या ही करता है। इसलिये हे महेशानि! वह मनुष्य और कुछ न हो करके परम पापी ही होता है।

यदि कोई मनुष्य निषिद्ध आचरण का अनुष्ठान करता है तो मैं उसके पुत्र-पत्नी आदि का निश्चित रूप से विनाश कर देता हूँ।।८-९।।

कण्ठे तु गरले देवि यदि पूजापरो भवेत् ।।१०।।
इह लोके दरिद्रः स्यान्मृते सूकरतां व्रजेत्।
पौराणिकं तान्त्रिकं वा न पठेन्मम सन्निधौ ।।११।।
नीलकण्ठस्य यन्मन्त्रं यदि कुर्यात् पुरस्क्रियाम्।
लक्षान्तरे तु देवेशि तस्य मृत्युर्न चान्यथा ।।१२।।

हे देवि! नीलकण्ठ के पूजन में यदि कोई तत्पर होता है तो वह इस लोक में दरिद्र रहते हुये मृत्यु के पश्चात् सूकर योनि को प्राप्त करता है।

पौराणिक अथवा तान्त्रिक मन्त्रों का मेरे समक्ष कभी भी पाठ नहीं करना चाहिये। हे देवेशि! नीलकण्ठ के मन्त्र का यदि कोई पुरश्चरण करता है तो उस मन्त्र के एक लाख जप पूर्ण होने के भीतर ही निश्चित रूप से उसकी मृत्यु हो जाती है।।१०-१२।।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पार्थिवं शिवपूजनम्।
तत्रादौ परमेशानि गुरुदेवं नमेत्पुनः ।।१३।।
नमो हराय नमस्कारं मृत्तिकामाहरेत् सुधीः।
महेश्वराय नमस्कारं लिङ्गं निर्माय यत्नतः ।।१४।।
शूलपाणे इहोच्चार्य सम्प्रतिष्ठितो भव।
अनेन मनुना देवि जीवन्यासं समाचरेत् ।।१५।।
सकारं बिन्दुरूपञ्च दीर्घयुक्तं षडक्षरम्।

हे देवि! अब मैं पार्थिव पूजन को कहता हूँ, तुम श्रवण करो। इस पूजन में सर्वप्रथम गुरुदेव को नमस्कार करने के पश्चात् नमो हराय कहते हुये नमस्कार करके मृत्तिका को ले आना चाहिये। उसके पश्चात् नमो महेश्वराय कहकर नमस्कार करके उस मृत्तिका से यत्नपूर्वक लिङ्ग का निर्माण करना चाहिये। तदनन्तर 'शूलपाणे इह सम्प्रतिष्ठितो भव' इस मन्त्र से उस लिङ्ग में जीव का न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् सां सीं आदि छः दीर्घ मन्त्रों से षडङ्ग न्यास करना चाहिये।।१३-१५।।

अस्य ध्यानं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहिता ॥१६॥
ध्यायेन्नित्यं महेशमित्यादि ।
पुष्पं शिरसि सन्धार्य मानसैः पूजनं चरेत् ।
पुनर्ध्यात्वा महेशानि शिवे पुष्पं निवेदयेत् ॥१७॥

अब इसके ध्यान को कहता हूँ, सावधान होकर श्रवण करो। 'ध्यायेन्नित्यं महेशं' इत्यादि ध्यानश्लोक के द्वारा पुष्प को मस्तक पर रखकर मन ही मन पूजन करना चाहिये। तदनन्तर हे महेशानि! पुनः ध्यान करके शिव के ऊपर उस पुष्प को निवेदित करना चाहिये।।१६-१७।।

पिनाकधृगिति चोच्चार्य इहागच्छ द्विधा वदेत् ।
इह तिष्ठ ततो द्वन्द्वं सन्निधेहि द्वयमिह ॥१८॥
इह सन्निहितो रुन्धस्वशब्दं ततो वदेत् ।
यावत् पूजां समुच्चार्य ततश्चैव करोम्यहम् ॥१९॥
स्नानीयं च पशुपतिं नियतं च नमश्चरेत् ।
वेदाद्यं योजयेद् देवि ब्राह्मणः साधकोत्तमः ॥२०॥

तदनन्तर 'पिनाकधृक् इहागच्छ आगच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि सन्निधेहि इह सन्निहितो भव सन्निहितो भव रुन्धस्व यावत् पूजां करोम्यहं' कहकर पशुपति को स्नानीय समर्पित करके नमस्कार करना चाहिये। हे देवि! उत्तम ब्राह्मण साधक को उक्त मन्त्र के आदि में प्रणव लगाना चाहिये।।१८-२०।।

एतत्पाद्यं महेशानि षडक्षरमनुं ततः ।
नमस्कारं समुच्चार्य सर्वं दद्याद्विचक्षणः ॥२१॥
क्षितिं जलं तथा चाग्निं वायुं चाकाशमेव च ।
यजमानं च सोमं च सूर्यं च मूर्त्तिना सह ॥२२॥
सर्वत्र नियुतं कृत्वा पूजयेत् साधकोत्तमः ।
प्रणवादिनमोऽन्तेन वामावर्तेन पूजयेत् ॥२३॥

मूर्त्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः पूर्वादिक्रमयोगतः।
आग्नेयान्ताः प्रपूज्यास्ता वेद्यां लिङ्गे शिवं जपेत् ॥२४॥

तदनन्तर षडक्षर मन्त्र का उच्चारण करके एतत्पाद्यं नमः कहकर विज्ञ साधक को सब कुछ प्रदान करना चाहिये। श्रेष्ठ साधक को क्षिति, जल, अग्नि, वायु आकाश, यजमान सोम तथा सूर्य का मूर्त्ति के साथ आदि में प्रणव एवं अन्त में नमः लगाकर वामावर्त्त क्रम से सर्वत्र पूजन करना चाहिये। शिव की इन आठ मूर्त्तियों का पूर्व दिशा से आरम्भ करके आग्नेय कोण तक में पूजन करने के पश्चात् पीठ पर लिङ्ग में शिव का पूजन करना चाहिये।।२१-२४।।

अष्टोत्तरशतं वा सहस्रं वा प्रजपेत्ततः।
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ॥२५॥
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्मयि स्थिते।
ततः स्तोत्रं समादाय जपञ्चैव समर्पयेत् ॥२६॥
मुखवाद्यं ततः कृत्वा चाष्टाङ्गैः प्रणमेत्सुधीः।
संहारेण महादेव क्षमस्वेति विसर्जनम् ॥२७॥

उपर्युक्त विधि से पूजन करने के उपरान्त मूल मन्त्र का एक सौ आठ अथवा एक हजार आठ बार जप करने के पश्चात् 'गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्मयि स्थिते।' इस स्तोत्र का पाठ करते हुये कृत जप का समर्पण करना चाहिये।

तदनन्तर मुखवाद्य को बजाकर सुधी साधक को अष्टाङ्ग प्रणाम निवेदित करने के पश्चात् संहार मुद्रा का प्रदर्शन करते हुये 'महादेव क्षमस्व' कहकर उनका विसर्जन करना चाहिये।।२५-२७।।

एवं पूजा प्रकर्त्तव्या शक्तिमन्त्रान् जपेद्यदि।
स शैव इति विख्यातः सर्वतन्त्रेश्वरो भवेत् ॥२८॥

इस प्रकार से पूजन करने के उपरान्त साधक यदि शक्तिमन्त्र का जप करता है तो वह साधक ही शैव के रूप में विख्यात होता हे एवं समस्त तन्त्रों का अधिपति होता है।।२८।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सूत्रं परमगोपनम्।
हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक् ॥२९॥
पशुपतिः शिवश्चैव महादेवेति तत्क्रमात्।
अष्टमूर्त्तिस्ततो देवि पूजयेत् साधकोत्तमः ॥३०॥

ततो जपेन्महेशानि शङ्खवाद्यं ततः परम्।
एतदन्यं प्रकर्त्तव्यं शक्तिदीक्षापरो यदि ॥३१॥
निषिद्धाचरणाद् देवि पापभाग् जायते नरः।

हे देवि! अब मैं अत्यन्त गुप्त सूत्र को कहता हूँ। हर, महेश्वर, शूलपाणि, पिनाकधारी, पशुपति, शिव एवं महादेव—इस क्रम से आठ मूर्त्तियों का पूजन करने के अनन्तर मन्त्र का जप करने के बाद मुखवाद्य बजाना चाहिये। यदि शक्तिदीक्षा से दीक्षित साधक हो तो उसे इससे भिन्न क्रम का अनुष्ठान करना चाहिये; क्योंकि निषिद्ध आचरण का पालन करने से मनुष्य पाप का भागी होता है।।२९-३१।।

न्यूनाधिकं महेशानि यदि पूजादिकं चरेत् ॥३२॥
सद्गुरुश्चापि शिष्यश्च शिवहत्यां प्रयच्छति।
न्यूनाधिकं महेशानि यदि चैकाक्षरं भवेत् ॥३३॥
वर्णसङ्ख्या महेशानि ब्रह्महत्या भविष्यति।
अत एव स पापिष्ठः सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ॥३४॥

हे महेशानि! इस पूजा में यदि न्यूनता अथवा अधिकता होती है तो सद्गुरु के साथ-साथ शिष्य को भी शिवहत्या का पाप लगता है। हे महेशानि! यदि एक अक्षर की न्यूनता अथवा अधिकता होती है तो वर्णसंख्या के हिसाब से ब्रह्महत्या होती है; अतः वह पापी होता है, यह पूर्णतः सत्य है।।३२-३४।।

एवं पूजां विधायादौ ततश्चान्यं प्रपूजयेत्।
आदौ शिवं पूजयित्वा शक्तिपूजा ततः परम् ॥३५॥
यत्किञ्चिदुपचारं हि तस्य किञ्चिन्निवेदयेत्।
अन्यथा मूत्रवत्सर्वं गङ्गातोयं भवेद्यदि ॥३६॥

इस प्रकार से प्रथमतः शिव का पूजन करने के अनन्तर अन्य देवता का पूजन करना चाहिये। पहले शिव की पूजा करनी चाहिये, उसके बाद शक्ति की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर उसके लिये जो कुछ भी सम्भव हो, वह उपचार निवेदित करना चाहिये। उपचार निवेदित न करने से वहाँ यदि गंगाजल भी रखा हो तो वह भी मूत्र के समान हो जाता है।।३५-३६।।

अत एव महेशानि आदौ लिङ्गं प्रपूजयेत्।
शिवस्नानोदकं देवि मूर्ध्नि सन्धारयेद्यदि ॥३७॥
सत्यं सत्यं महेशानि शिवतुल्यो न संशयः।

हे महेशानि! इसीलिये प्रथमतः शिवलिंग का पूजन करना चाहिये। हे देवि! यदि

कोई साधक शिवस्नानोदक को अपने मस्तक पर धारण करता है तो वह साधक निश्चित रूप से शिव के समान ही हो जाता है।।३७।।

शिवरूपः स्वयं भूत्वा देवि पूजां समाचरेत् ॥३८॥
शैववैष्णवदुर्गार्किगाणपत्येन्द्रसम्भवान् ।
आदौ शिवं पूजयित्वा पश्चादन्यं प्रपूजयेत् ॥३९॥
आदौ लिङ्गं पूजयित्वा यदि चान्यं प्रपूजयेत् ।
तत्फलं कोटिगुणितं सत्यं सत्यं न संशयः ॥४०॥

हे देवि! साधक को स्वयं शिवस्वरूप होकर पूजा करनी चाहिये। शिव, विष्णु, दुर्गा, सूर्य, गणेश, इन्द्र के उपासकों को निश्चित रूप से प्रथमतः शिव का पूजन करने के पश्चात् ही अन्य देव की पूजा करनी चाहिये। पहले शिवलिंग का पूजन करने के पश्चात् यदि अन्य देवता का पूजन किया जाता है तो उस पूजा का फल करोड़ों गुणा अधिक होता है, यह सर्वथा सत्य है।।३८-४०।।

अन्यदेवं पूजयित्वा शिवं पश्चाद्यजेद्यदि ।
तस्य पूजाफलं सर्वं भुज्यते यक्षराक्षसैः ॥४१॥

इसके विपरीत अन्य देवता का पूजन करने के बाद यदि शिव का पूजन किया जाता है तो उस पूजा के समस्त फलों का यक्ष एवं राक्षस भक्षण कर जाते हैं।।४१।।

इति ते कथितं कान्ते तन्त्राणां सारमुत्तमम् ।
बहु किं कथ्यते देवि भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥४२॥

इति श्रीनिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे हरचण्डिकासंवादे
तन्त्रसारकथनन्नाम नाम पञ्चदशः पटलः

हे प्रिये! इस प्रकार तुमसे मैंने समस्त तन्त्रों के श्रेष्ठ सारभाग को कहा। अब अधिक क्या कहूँ? इसके पश्चात् तुम और क्या सुनना चाहती हो?।।४२।।

निर्वाणतन्त्र का पञ्चदश पटल समाप्त

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

तन्त्रशास्त्र के महत्वपूर्ण ग्रन्थ-मूल संस्कृत एवं हिन्दी टीका सहित

- **तन्त्रसार** : परमहंस मिश्र (1-2 भाग)
- **कुलार्णवतन्त्रम्** : परमहंस मिश्र
- **नित्योत्सव** : (श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ) परमहंस मिश्र
- **त्रिपुरारहस्यम्** : (ज्ञान एवं महात्म्य खण्ड) जगदीशचन्द्र मिश्र (1-2 भाग)
- **तन्त्रालोक** : राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- **[illegible]तन्त्रं** : राधेश्याम चतुर्वेदी (1-2 भाग)
- **[illegible]तन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
- **कामाख्यातन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
- **महाकालसं[illegible]** [illegible]मकला-कालीखण्ड) राधेश्याम [illegible]
- **महाका[illegible]** [illegible]ली-खण्ड) राधेश्याम [illegible]
- **रुद्रयामल[illegible]** [illegible]य (1-2 भाग)
- **शारदा[illegible]** [illegible]लवीय (1-2 भाग)
- **मन्त्रमहोदधि** [illegible]लवीय
- **लक्ष्मीतन्त्रम्** [illegible]नारायण (1-2 भाग)
- **तन्त्रराजतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **महानिर्वाणतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
- **कामकलाविलास** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **वरिवस्यारहस्यम्** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **स्पन्दकारिका** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **सर्वोल्लासतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **नीलसरस्वतीतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **भूतडामरतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **अन्नदाकल्पतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **त्रिपुरार्णवतन्त्रम्** : जगदीशचन्द्र मिश्र
- **विज्ञानभैरव** : [illegible]
- **श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्** : [illegible] (1-5 भाग सम्पूर्ण)
- **देवीर[illegible]** : (रुद्रयामलतन्त्रोक्तम्) क[illegible] (1-2 भाग)
- **स्व[illegible]** [illegible] टीका
- **महा[illegible]** : कपिलदेवनारायण
- **बृह[illegible]** [illegible]पिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **सौन्द[illegible]** [illegible]लक्ष्मीधरी टीका सहित सु[illegible]
- **सिद्धा[illegible]पद्धति** : द्वारकादास शास्त्री
- **आगमतत्त्वविलास** : एस.एन.खण्डेलवाल (1-4 भाग सम्पूर्ण)
- **राधातन्त्रम्** : एस.एन. खण्डेलवाल
- **सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्रम्** एस.एन.खण्डेलवाल

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी द्वारा हिन्दी में लिखित

तंत्र विषयक महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थ

- **श्रीविद्या-साधना** : (श्रीविद्या-उपासना का साङ्गोपाङ्ग शास्त्रीय विवेचन) (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- **भारतीय शक्ति-साधना** : (शक्ति-विज्ञानः स्वरूप एवं सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन)
- **ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना** : (महाविद्याबगला-उपासना का शास्त्रीय विवेचन)
- **काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र** : (शिवसूत्र, शक्तिसूत्र एवं स्पन्दसूत्र के सन्दर्भ में)
- **मुद्राविज्ञान एवं साधना** : (नित्यकर्मीय एवं तान्त्रिक मुद्राओं का सचित्र एवं शास्त्रीय विवेचन)

श्रीसाम्बपुराणम्

(सूर्य उपासना का विवेचक ग्रन्थ)

हिन्दी टीका सहित

श्री एस. एन. खण्डेलवाल

चौखाम्बा पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली - 110002

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001

तन्त्रशास्त्र के महत्वपूर्ण ग्रन्थ-मूल संस्कृत एवं हिन्दी टीका सहित

- **तन्त्रसार** : परमहंस मिश्र (1-2 भाग)
- **कुलार्णवतन्त्रम्** : परमहंस मिश्र
- **नित्योत्सव** : (श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ) परमहंस मिश्र
- **त्रिपुरारहस्यम्** : (ज्ञान एवं महात्म्य खण्ड) जगदीशचन्द्र मिश्र (1-2 भाग)
- **तन्त्रालोक** : राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- **स्वच्छन्दतन्त्रं** : राधेश्याम चतुर्वेदी (1-2 भाग)
- **नेत्रतन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
- **कामाख्यातन्त्रम्** : राधेश्याम चतुर्वेदी
- **महाकालसंहिता** : (कामकला कालीखण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी
- **महाकालसंहिता** : ([illegible]खण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी [illegible]
- **रुद्रयामलम्** : सुधाकर [illegible] भाग)
- **शारदातिलकम्**- सुधाकर [illegible] भाग)
- **मन्त्रमहोदधि** : सुधाकर [illegible]
- **लक्ष्मीतन्त्रम्** : कपिल[illegible] (1-2 भाग)
- **तन्त्रराजतन्त्रम्**- कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **महानिर्वाणतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
- **कामकलाविलास** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **वरिवस्यारहस्यम्** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **स्पन्दकारिका** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **सर्वोल्लासतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **नीलसरस्वतीतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **भूतडामरतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **अन्नदाकल्पतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **त्रिपुरार्णवतन्त्रम्** : जगदीशचन्द्र मिश्र
- **विज्ञानभैरव** : बापूलाल अंजना
- **श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण (1-5 भाग सम्पूर्ण)
- **देवीरहस्यम्** : (रुद्रयामलतन्त्रोक्तम्) कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **स्वर्णतन्त्र** [illegible] टीका
- **महानिर्वाण**[illegible] : कपिलदेवनारायण
- **बृहत्तन्त्रसार** : कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **सौन्दर्यलहरी** : लक्ष्मीधरी टीका सहित सुधाकर [illegible]
- **सिद्धसिद्धान्तपद्धति** : द्वारकादास शास्त्री
- **आगमतत्त्वविलास** : एस.एन.खण्डेलवाल (1-4 भाग सम्पूर्ण)
- **राधातन्त्रम्** : एस.एन. खण्डेलवाल
- **सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्रम्** एस.एन.खण्डेलवाल

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी द्वारा हिन्दी में लिखित

तंत्र विषयक महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थ

- **श्रीविद्या-साधना** : (श्रीविद्या-उपासना का साङ्गोपाङ्ग शास्त्रीय विवेचन) (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- **भारतीय शक्ति-साधना** : (शक्ति-विज्ञानः स्वरूप एवं सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन)
- **ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना** : (महाविद्याबगला-उपासना का शास्त्रीय विवेचन)
- **काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र** : (शिवसूत्र, शक्तिसूत्र एवं स्पन्दसूत्र के सन्दर्भ में)
- **मुद्राविज्ञान एवं साधना** : (नित्यकर्मीय एवं तान्त्रिक मुद्राओं का सचित्र एवं शास्त्रीय विवेचन)

श्रीसाम्बपुराणम्

(सूर्य उपासना का विवेचक ग्रन्थ)

हिन्दी टीका सहित

श्री एस. एन. खण्डेलवाल

चौखाम्बा पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली - 110002

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001